वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६१ अंक ५ मई २०२३

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६१

अंक ५

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक

स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक

स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक

स्वामी पद्माक्षानन्द

ज्येष्ठ, सम्वत् २०८०

मई, २०२३

अनुक्रमणिका

* सभी धर्मों के यथार्थ प्रेमी यहाँ (बेलूड़ मठ में) एकत्र होंगे : विवेकानन्द २७०
* रामकृष्ण संघ : एक विहंगम दृष्टि (स्वामी पररूपानन्द) २७३
* श्रीरामकृष्ण मिशन का सेवाव्रत (स्वामी प्रभानन्द) २७६
* रामकृष्ण मिशन का आदर्श, क्रियान्वयन और प्रभाव (स्वामी सुवीरानन्द) २८२
* (बच्चों का आंगन) बच्चों के राखालराज (श्रीमती मिताली सिंह) २८८
* किसी से घृणा न करें (स्वामी सत्यरूपानन्द) २९०
* (युवा प्रांगण) इच्छाशक्ति को कैसे बढ़ायें (स्वामी गुणदानन्द) २९१
* श्रीरामकृष्ण का आकर्षण (स्वामी अलोकानन्द) २९६
* (कविता) सदा शुभ हो ! सदा शुभ हो ! (रामकुमार गौड़) २८१
* (कविता) वीर विवेकानन्द आ गये (ओमप्रकाश वर्मा) ३०७

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) २६९
पुरखों की थाती २६९
सम्पादकीय २७१
प्रश्नोपनिषद् २८९
आध्यात्मिक जिज्ञासा २९३
श्रीरामकृष्ण-गीता २९५
गीतातत्त्व-चिन्तन ३००
रामराज्य का स्वरूप ३०२
सारगाछी की स्मृतियाँ ३०५
साधुओं के पावन प्रसंग ३०८
समाचार और सूचनाएँ ३१०

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : *०९८२७१ ९७५३५* (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)

ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***

आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति १७/–	१६०/-	८००/-	१६००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	५० यू.एस. डॉलर	२५० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिये	२००/–	१०००/–	

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) **विवेक ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमितता के कारण कई बार पत्रिका नहीं मिलती है। अतः पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक-विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे अनेक सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है।** पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। **अंक उपलब्ध रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।**

(४) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

रामकृष्ण मिशन की १२५वीं स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में बेलूड़ मठ के भव्य मन्दिर के साथ वर्तमान रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के मुख्य कार्यालय और रामकृष्ण मिशन के संस्थापक स्वामी विवेकानन्द को दर्शाया गया है।

'**vivek jyoti hindi monthly magazine**' के नाम से

अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

मई माह के जयन्ती और त्यौहार

०१ रामकृष्ण मिशन की स्थापना
०५ भगवान बुद्ध
३० फलहारिणी काली पूजा
१,१५,३१ एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री अनुराग प्रसाद, गाजियाबाद (उ.प्र.)	७९०१/-
,, ,, ,, ,,	१३००१/-
श्री डी.आर. देवांगन, रायपुरा, रायपुर (छ.ग.)	१२००/-
श्री अश्विनी जांगरा, कठमंडी, रोहतक (हरयाणा)	१०००/-
श्री एम.डी. प्रभु, रहाटे कॉलोनी, नागपुर (महा.)	३२००/-

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
७०२.	डॉ. पूजा असोपा, टोंक (राजस्थान)	किवी किड्स एकेडमी, प्रताप नगर, जयपुर (राजस्थान)
७०३.	.....	विद्याज्ञान स्कूल, सुरैंचा, सिधौली, जि. सीतापुर (उ.प्र.)
७०४.	.....	जे.बी. एकेडमी, सिविल लाईन, फैजाबाद (उ.प्र.)

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा । – स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए । आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं । आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है ।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र १८००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी ।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे । दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा । यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है ।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो । आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं । आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें ।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता **– व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी । तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है । यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें । आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं । प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. १०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा । रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है ।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर' !

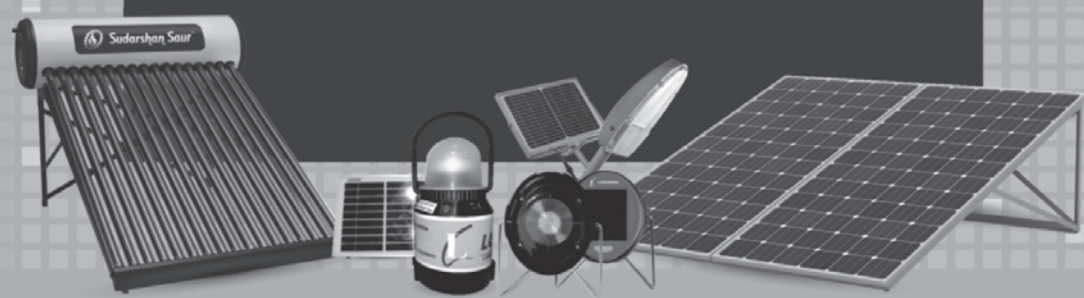

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६१ मई २०२३ अंक ५

यतिसंघमहोद्यान सुखसंचारकारिणे।
नरेन्द्रनाथदत्ताय विवेकानन्दस्वामिने।
त्वत्तो न हि परः कोऽपि विवेकानन्द ते नमः।।
यत्सेवाव्रतमामनन्ति मुनयो बुद्धो जिनः शंकरः
श्रीरामः कमनीयकाम्यकवने वृन्दावने माधवः।
जाह्नव्याः सुतटेषु गौड़गहने गौरांगदेवस्तथा
तत्सेवाव्रतमद्य साधकवरः स्वामी पुनर्घोषते।।

– हे विवेकानन्द ! संन्यासियों के संघरूपी उद्यान में आनन्दपूर्वक विचरण करने वाले, पूर्वाश्रम में नरेन्द्रनाथ दत्त नाम धारण करने वाले विवेकानन्द स्वामी ! तुम्हारी अपेक्षा श्रेष्ठ और कोई नहीं ! तुमको नमस्कार, तुमको नमस्कार !!

– प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों ने, बुद्ध ने, महावीर ने, शंकराचार्य ने; कमनीय काम्यक वन में श्रीरामचन्द्र ने, वृन्दावन में श्रीकृष्ण ने एवं गौड़ देश में गंगा तट पर गौरांगदेव ने जिस सेवाधर्म की बात कही थी, उसी सेवा व्रत की घोषणा साधकवर स्वामी विवेकानन्द ने आज पुनः की है।

पुरखों की थाती

दरिद्रता धीरतया विराजते,
कुवस्त्रता स्वच्छतया विराजते।
कदन्नता चोष्णतया विराजते,
कुरूपता शीलतया विराजते।।७९३।।

– धीरता के साथ निर्धनता भी शोभित होती है, स्वच्छता के साथ साधारण वेशभूषा शोभित होती है, गर्म-गर्म मिले तो सादा भोजन भी सुस्वादु लगता है और स्वभाव में सुशीलता हो, तो कुरूपता भी शोभित होती है।

द्वयक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम्।
ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम्।।७९४।।
(महाभारत)

– दो अक्षरों का 'मम' (मेरा) – यह शब्द 'मृत्यु' का सूचक है और तीन अक्षरों का 'न मम' (मेरा नहीं) – यह भाव सनातन 'ब्रह्म' का सूचक है।

दातृत्वं प्रियवक्तृत्वं धीरत्वमुचितज्ञता।
अभ्यासेन न लभ्यन्ते चत्वारः सहजा गुणाः।।७९५।।

– दान देने का स्वभाव, मधुर बोलने की प्रवृत्ति, धैर्य तथा उचित-अनुचित का बोध – ये चार गुण व्यक्ति में (पूर्व-संस्कारों के कारण) सहज-भाव से होते हैं। अभ्यास से इन्हें नहीं पाया जा सकता।

सभी धर्मों के यथार्थ प्रेमी यहाँ (बेलूड़ मठ में) एकत्र होंगे : विवेकानन्द

यह संघ उन श्रीरामकृष्ण के नाम पर स्थापित होगा, जिनके नाम पर हम संन्यासी हुए और आप सब महानुभाव जिनको अपना जीवन-आदर्श मानकर संसार आश्रमरूप कार्यक्षेत्र में स्थित हैं और जिनके देहावसान के बाद २० वर्ष ही में प्राच्य तथा पाश्चात्य जगत् में उनके पवित्र नाम और अद्‌भुत जीवनी का आश्चर्यजनक प्रसार हुआ है। हम सब प्रभु के दास हैं, आप लोग इस कार्य में सहायता कीजिए।

संघ का नाम 'रामकृष्ण संघ' अथवा 'रामकृष्ण मिशन' रखा गया। उसके उद्देश्य आदि नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

उद्देश्य – मनुष्यों के हितार्थ श्रीरामकृष्ण ने जिन तत्त्वों की व्याख्या की और स्वयं अपने जीवन में प्रत्यक्ष किया है, उन सबका प्रचार तथा मनुष्यों की दैहिक, मानसिक और पारमार्थिक उन्नति के निमित्त वे सब तत्त्व जिस प्रकार से प्रयुक्त हो सकें, उसमें सहायता करना ही इस संघ (मिशन) का उद्देश्य है।

व्रत – जगत् के सब धर्ममतों को एक अक्षय सनातन धर्म का रूपान्तर मात्र जानकर, समस्त धर्मावलम्बियों में मैत्री स्थापित करने के लिए श्रीरामकृष्ण ने जिस कार्य की प्रवर्तन किया, उसी का संचालन इस संघ का व्रत है।

कार्य प्रणाली – मनुष्यों की सांसारिक और आध्यात्मिक उन्नति हेतु विद्यादान करने के लिए उपयुक्त लोगों को शिक्षित करना। शिल्पियों तथा श्रमजीवियों का उत्साह बढ़ाना और वेदान्त तथा अन्यान्य धर्मभावों का, जैसाकि रामकृष्ण-जीवन में व्याख्या हुई थी, मनुष्य समाज में प्रचार करना।

भारत में कार्य – भारत के नगर-नगर में आचार्य-व्रत ग्रहण के अभिलाषी गृहस्थ या संन्यासियों की शिक्षा के निमित्त आश्रम स्थापित करना और उन उपायों का अवलम्बन करना, जिनसे वे दूर-दूर जाकर जन साधारण को शिक्षा दे सकें।

विदेशों में कार्य विभाग – भारत से बाहर अन्य देशों में व्रतधारियों को भेजना और उन देशों में स्थापित

सब आश्रमों की भारत के आश्रमों से घनिष्ठता और सहानुभूति बढ़ाना तथा नये-नये आश्रमों की स्थापना करना।

यही पर साधुओं के रहने का स्थान होगा। यह मठ साधन-भजन एवं ज्ञान-चर्चा का प्रधान केन्द्र होगा, यही मेरी इच्छा है। यहाँ से जिस शक्ति की उत्पत्ति होगी, वह पृथ्वी भर में फैल जायेगी और वह मनुष्य के जीवन की गति को परिवर्तित कर देगी। ज्ञान, भक्ति, योग, कर्म के समन्वयस्वरूप मानव के लिए हितकर उच्च आदर्श यहाँ से प्रसृत होंगे। इस मठ के पुरुषों के इशारे पर एक समय दिग्दिगन्त में प्राण का संचार होगा। समय पर यथार्थ धर्म के सब प्रेमी यहाँ आकर एकत्र होंगे।

वह जो मठ के दक्षिण भाग की जमीन देख रहा है, वहाँ पर विद्या का केन्द्र बनेगा। व्याकरण, दर्शन, विज्ञान, काव्य, अलंकार, स्मृति, भक्तिशास्त्र और राज-भाषा की शिक्षा उसी स्थान में दी जायेगी। प्राचीन काल की पाठशालाओं के अनुकरण पर यह विद्या-मन्दिर स्थापित होगा। बालब्रह्मचारी उस स्थान पर रहकर शास्त्रों का अध्ययन करेंगे। उनके भोजन-वस्त्र का प्रबन्ध मठ की ओर से किया जायेगा। ये सब ब्रह्मचारी पाँच वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् यदि चाहेंगे, तो घर लौटकर गृहस्थी कर सकेंगे। यदि इच्छा हो, तो मठ के वरिष्ठ संन्यासियों की अनुमति लेकर संन्यास ले सकेंगे। इन ब्रह्मचारियों में जो उच्छृंखल या दुश्चरित्र पाये जायेंगे, उन्हें मठाधिपति उसी समय बाहर निकाल देंगे।

सम्पादकीय

श्रीरामकृष्ण के चरणों में बैठने से ही भारत का उत्थान

एक संस्कृत सुभाषित है, जिसे मैंने स्कूल में पढ़ा था –

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते
निर्घर्षणछेदनतापताडनैः।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते
त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा।।

– जिस प्रकार से सोने की परीक्षा चार प्रकार से – घर्षण के द्वारा, छेदन के द्वारा, तपाकर और पीटकर की जाती है, ठीक उसी प्रकार पुरुष की परीक्षा त्याग, शील, गुण और कर्म के द्वारा की जाती है।

संघ के संदर्भ में भी ऐसा कहा जा सकता है – तथा चतुर्भिः संघः परीक्ष्यते। जब कोई संघ, संगठन या संस्थान दीर्घकाल तक अपने आदर्श पर अडिग रहकर अपनी प्रतिष्ठा, मर्यादा को अक्षुण्ण रखकर समाज की उत्कृष्ट सेवा करता है और समाज के द्वारा उसकी अनुशंसा और प्रशंसा मिलती है, तो यह उसकी बड़ी उपलब्धि होती है। उसमें उसकी आदर्श-शक्ति, उसके कार्यकर्ताओं की उन्नत चरित्र-शक्ति और समाज की विवेकशीलता और उदारता का योगदान होता है। संघ और संस्था की परीक्षा भी सोने के सदृश है, जो समाज के द्वारा विभिन्न कसौटियों पर कसकर खरा उतरने पर समाज उसे अपनी स्वीकृति देता है। समाज देखता है – संस्था में त्याग की भावना है या नहीं। संस्था सेवा अपने स्वार्थ के लिये कर रही है या समाज के कल्याण के लिये कर रही है। यह पहली कसौटी है। संस्था में सेवा करनेवालों में शील है या नहीं। इनमें विनम्रता है कि नहीं। ये लोगों के प्रति कैसा व्यवहार कर रहे हैं। कहीं सेवाजनित उच्छृंखलता और अपने प्रति श्रेष्ठभावना और सेवा लेनेवालों के प्रति हीनभावना तो नहीं है। यह दूसरी कसौटी है। सेवकों में सद्गुण है कि नहीं। ये जो सेवा कर रहे हैं, उस सेवा के लिये अपेक्षित गुण, योग्यता इनमें है या नहीं। नहीं तो सेवा के लिये अपेक्षित योग्यता के अभाव में हित के बदले अहित हो जाता है। अतः गुण का होना तीसरी कसौटी है। चौथा और सबसे महत्त्वपूर्ण है कर्म। सेवकों का कर्म कैसा है। उपरोक्त सभी गुणों से सम्पन्न होने पर भी उन्हें वे व्यवहार में कितना अभिव्यक्त कर पाते हैं। उनका आचरण कैसा है। यह चौथी कसौटी है।

युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा स्थापित रामकृष्ण संघ भी समाज की इन्हीं कसौटियों से कसकर निकला हुआ सोना है। आज समाज में रामकृष्ण संघ की स्वीकृति है। संघ के सेवा-कार्यों की समाज, शासन, प्रशासन द्वारा अनुशंसा-प्रशंसा की जा रही है। इन सबका श्रेय इस संस्था के आदर्श युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण की दिव्य शक्ति है, श्रीमाँ सारदा की ठाकुर से प्रार्थना और उनका अमोघ स्नेहाशीष है, इस महान संघ के संस्थापक युगाचार्य यति-सम्राट स्वामी विवेकानन्द का त्यागमय महान चरित्र, संघ के प्रति दूरदर्शिता, उनका प्रबन्धन और परदुखकातरता है और उनके गुरु-भाइयों के त्याग-तपोमय विरागी जीवन तथा उनके अनुयाइयों द्वारा की गई शिवभाव से जीवसेवा का है।

श्रीरामकृष्ण संघ की स्थापना का मूल स्रोत श्रीरामकृष्ण के हृदय-सिन्धु से निःसृत जीवदुखकातरता है। श्रीरामकृष्ण की चेतना से एकाकार अभिन्नहृदय स्वामी विवेकानन्द ने इसी संवेदना की अनुभूति की और लोककल्याण और भारत के विकास में श्रीरामकृष्ण की ही प्रमुख भूमिका का अपने अन्तस्तल में बोध किया। आधुनिक भारत के नव-निर्माता स्वामी विवेकानन्द जी ने ३० नवम्बर, १८९४ को संयुक्त राज्य अमेरिका से डॉ. नंजुदाराव को लिखित पत्र में भारत के उत्थान का मूल मन्त्र देते हुये कहा था – ''**श्रीरामकृष्ण के चरणों में बैठने से ही भारत का उत्थान हो सकता है। उनकी जीवनी और शिक्षाओं को चारों ओर फैलाना होगा, उन्हें हिन्दू समाज के रोम-रोम में भरना होगा।** यह कौन करेगा? श्रीरामकृष्ण की पताका हाथ में लेकर संसार के उद्धार हेतु कौन अभियान करेगा? कौन है, जो नाम-यश, भोग-ऐश्वर्य और यहाँ तक कि इहलोक तथा परलोक की सारी आशाओं का बलिदान करके अवनति की इस बाढ़ को रोकने हेतु अग्रसर होगा? कुछ इने-गिने युवकों ने इसमें

अपने को झोंक दिया है, अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया है। परन्तु इनकी संख्या थोड़ी है। हम चाहते हैं कि ऐसे ही कई हजार मनुष्य आयें और मैं जानता हूँ कि वे आयेंगे। ... वह धन्य है, जिसे प्रभु ने चुन लिया है?[१]

भारत के विकास में परम सहायक श्रीरामकृष्ण के जीवन-चरित और उनके उपदेशों के प्रचार-प्रसार के लिये ही स्वामीजी ने १ मई, १८९७ को रामकृष्ण मिशन की स्थापना की, जो विश्वप्रसिद्ध है। स्वामीजी ने भारत की उन्नति की परिकल्पना श्रीरामकृष्ण के जीवन और संदेशों के परिप्रेक्ष्य में की, जिस विशाल वट-वृक्ष की छाया में आज सम्पूर्ण विश्व शान्ति प्राप्त कर रहा है।

रामकृष्ण मिशन की विभिन्न क्षेत्रों में सेवाएँ

रामकृष्ण मिशन विभिन्न क्षेत्रों में सेवा के द्वारा समाज, राष्ट्र और विश्व की सेवा में संलग्न है – शिक्षा क्षेत्र में ५३९ विद्यालयों एवं महाविद्यालयों, एक विश्वविद्यालय और १०५६ अनौपचारिक केन्द्रों के द्वारा विद्यार्थियों के भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान हेतु, आत्मविकास हेतु सतत प्रयत्नशील है। नई पीढ़ी में राष्ट्रसेवा की भावना एवं प्रबुद्ध नागरिक बनने हेतु युवा-शिविरों का आयोजन भी किया जाता है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में अपने १४ चिकित्सालयों १२३ चिकित्सा केन्द्रों एवं ३५६ चिकित्सा शिविरों के द्वारा लोगों के शारीरिक सुस्वास्थ्य हेतु सेवारत है। देश-विदेश में संकटकालीन स्थिति – भूकम्प, बाढ़, अग्निजनित घटनाओं से त्रस्त मानवों की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु समय-समय पर विभिन्न राहत-शिविरों द्वारा लोगों की क्षुधा-पिपासा शान्त कर उनके सामान्य जीवन-यापन में सहायता करता है। यह अध्यात्म पिपासुओं की आध्यात्मिक पिपासा की शान्ति हेतु राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद, श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द, ऋषि-मुनियों और शास्त्र के परिप्रेक्ष्य में आध्यात्मिक कक्षाओं का संचालन और आध्यात्मिक शिविरों का आयोजन करता है, जिससे लोग अपने-अपने धर्म-भाव में निष्ठा अक्षुण्ण रखते हुये अपनी आध्यात्मिक उन्नति कर सकें, जीवन के मूल लक्ष्य परमात्मा की अनुभूति कर अपने मानव-जन्म को धन्य कर सकें। संक्षेपत: रामकृष्ण मिशन के ये उल्लेखनीय सेवा-कार्य हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने स्वयं रामकृष्ण मिशन के नीति-नियमों का निर्धारण किया है, उन्हीं के द्वारा निर्देशित विधानों पर रामकृष्ण मिशन संचालित है। देश-काल-परिस्थिति के अनुसार उसकी व्यवस्थाओं में भले ही परिवर्तन हो, लेकिन मूल सिद्धान्त और आदर्श अचल हैं।

संघ-सेवा से मुक्ति का द्वार उन्मुक्त

युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द जी ने संघ में सम्मिलित होकर सेवा करनेवाले साधुओं के लिये अद्भुत आदर्श स्थापित किया। उन्होंने कहा कि इस संघ के द्वारा आत्ममुक्ति और जगत-कल्याण; दोनों होंगे। यहाँ के सेवक अपनी मुक्ति और लोक-कल्याण; दोनों के लिये साथ-साथ प्रयत्नशील होंगे – **आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च**। इस प्रकार स्वामीजी ने जन्म-जन्मान्तरों से वांछित मुक्ति मार्ग को नारायण भाव से नर की सेवा द्वारा प्रशस्त किया।

शान्ति का सुगम मार्ग

इतना ही नहीं, स्वामीजी ने अशान्तचित्त से व्यथित मरुभूमि में शान्ति के अन्वेषकों के लिये सुगम शान्तिप्राप्ति का मन्त्र भी दिया। १८९४ में ही स्वामीजी ने अपने गुरुभाइयों को पत्र लिखा था, जिसमें वे लिखते हैं – ''**जो कोई उनको (श्रीरामकृष्ण को) प्रणाम करेगा, तत्काल ही वह स्वर्ण बन जायेगा। इस सन्देश को लेकर तुम घर-घर जाओ, देखोगे कि तुम्हारी सारी अशान्ति दूर हो गयी है।**''[२]

इन सब सेवा-कार्यों के अतिरिक्त युगाचार्य स्वामीजी ने मानव जीवन को स्वर्ण सदृश विशुद्ध और मूल्यवान बनाने हेतु सरल मन्त्र दिया, जो श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करेगा, वह तत्काल सोना बन जायेगा। भगवान श्रीकृष्ण भी गीता में कहते हैं 'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा'। भगवान को एकचित्त से प्रणाम करने से मानव का जीवन तत्क्षण मोह-मायादि से मुक्त होकर अपने शुद्ध स्वरूप का बोध करता है। श्रीरामकृष्ण के उपदेशों को आत्मसात् करनेवाला व्यक्ति स्वर्ण बन जाता है, वह रत्न बन जाता है, जो भूगर्भ, गिरि, सिन्धु में कहीं भी रहे, उसे माया रूपी मलिनता स्पर्श नहीं करती। वह विशुद्ध बना रहता है। ऐसे ही महान पूज्य संन्यासियों से यह संघ संचालित है। इस संघ में सम्मिलित होनेवाले और इससे संयुक्त होकर कार्य करनेवाले कार्यकर्ताओं पर श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द की अमोघ कृपा वर्षित हो, ऐसी उनसे हार्दिक आकुल प्रार्थना है। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. विवेकानन्द साहित्य ३/३३७-३३८, **२.** वही, ३/३०१

रामकृष्ण मिशन की १२५वीं वर्षगाँठ पर विशेष

रामकृष्ण संघ : एक विहंगम दृष्टि

स्वामी पररूपानन्द, जयरामवाटी

भूमिका – उन्नीसवीं शताब्दी में सनातन धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा एवं विश्व स्तर पर उसके प्रचार-प्रसार का कार्य रामकृष्ण भावान्दोलन के माध्यम से एक सुदृढ़ आधार पर आरम्भ हुआ था। ईश्वर ने अहैतुकी कृपा से श्रीरामकृष्ण के रूप में आविर्भूत होकर स्वयं ही यह कार्य आरम्भ किया। रामकृष्ण-संघ श्रीरामकृष्ण की विराट लीला का अभिन्न अंग है। श्रीरामकृष्ण ने दक्षिणेश्वर में द्वादश वर्ष में सनातन धर्म की विभिन्न साधना पद्धतियों का परम्परागत रीति से अनुसरण कर उन सभी साधना पद्धतियों के प्रति क्षीण हुई श्रद्धा में शक्तिसंचार किया। साथ ही सूफी विचारधारा और ईसाई-धर्म में निहित सत्य की अनुभूति भी की। इन सभी विभिन्न मतों के अनुसार आध्यात्मिक तथ्यों को अनुभूति के आधार पर स्वयं अनुभव करके सूत्र रूप में घोषणा की –'जितने मत उतने पथ'। श्रीरामकृष्ण देव ने अनवरत समीप आगत जिज्ञासु, भक्त और समाज में शिक्षित परन्तु भक्तिविहीन व्यक्तियों को सदुपदेश दिया। इतना ही नहीं, भारतीय संस्कृति के अनेक पहलुओं का अर्थ स्पष्ट कर समाज में शान्ति सौहार्द की भावना लाने का मार्ग प्रशस्त किया। यहाँ तक कि दैनन्दिन जीवन में आपसी व्यवहार को परिमार्जित करने के विषय को स्वयं के आचरण से सिखाया।

श्रीरामकृष्ण को काशीपुर में गले के रोग की चिकित्सा हेतु लाया गया था। वहीं से ही उनके आविर्भाव का महान उद्देश्य – मानवमात्र के व्यक्तिगत जीवन तथा साथ-ही-साथ विश्व कल्याण के लिये उनके द्वारा ऐसी व्यवस्था के रूपायन करने के संकेत मिलने लगे थे, जिससे भविष्य में प्रभावशाली रूप से उनके द्वारा सौंपे गये दायित्व को स्थायी रूप से कार्यान्वित करना सम्भव हो सके। संघबद्ध होकर सुव्यवस्थित ढंग से कार्य करने से बनी परम्परा से ही यह सम्भव हो पाता है। अत: रामकृष्ण-संघ की उत्पत्ति के बीज बोने का कार्य ठाकुर ने स्वयं स्वामी अद्वैतानन्द (उस समय उनके भक्त बूढ़े गोपाल दादा) द्वारा लाये कुछ गेरुआ वस्त्रों व रुद्राक्ष की माला को अपने त्यागी युवा शिष्यों को बाँटकर किया था। यहीं ठाकुर ने अपने द्वारा प्रवर्तित सनातनधर्म की पुनर्स्थापना के कार्य को अग्रगति प्रदान करने का दायित्व नरेन्द्रनाथ को सौंपा था। रामकृष्ण-संघ का यह बीज वाराहनगर मठ में ठाकुर के संन्यासी शिष्यों की श्रद्धा-भक्ति से की गई कठोर तपस्या तथा सहृदय गृहस्थ-भक्तों के आर्थिक व भावनात्मक सहयोग से सिंचित होकर पल्लवित-पुष्पित हुआ। तत्पश्चात् शनैः शनैः अग्रसर होता हुआ आलमबाजार स्थित मठ में लगभग चार वर्ष विकसित होता रहा। स्वामीजी के विदेश से प्रथम बार वापस आने पर, उनकी क्रियाकलापों की

पुण्य-स्मृति संजोये हुए आलमबाजार स्थित यह भवन, १८९७ ई. में कलकत्ता में हुए भूकम्प से क्षतिग्रस्त हुआ। इतने में बेलूड़ में स्थायी मठ की भूमि क्रय करने के समय समीपस्थ पूर्वपरिचित नीलाम्बर मुखोपाध्याय के उद्यान भवन में सबने अगला पड़ाव डाला। यहाँ निवास करते हुए मठ की नई भूमि एवं भवन सम्बन्धित निर्माण-कार्य का पर्यवेक्षण करना सहज हो गया था। यथासमय रामकृष्ण-संघ के प्रधान केन्द्र के रूप में उभरते हुए हावड़ा जिले के बेलूड़ गाँव में रामकृष्ण मठ (लोकप्रिय नाम बेलूड़ मठ) की निजी भूमि पर स्थित भवन में ठाकुर के संन्यासी शिष्यों के साथ अन्य संन्यासी-ब्रह्मचारीगण ने भी निवास करना आरम्भ किया। इस संक्षिप्त भूमिका के साथ यह लेख आरम्भ किया जाता है।

प्रेरणा – १७५७ ई. में प्लासी के युद्ध में ईस्ट इंडिया कम्पनी की जीत के पश्चात् कलकत्ता में अपना शासन चलाने में क्रमशः चतुराई और बल का प्रयोग कर अंग्रेजों ने अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक काफी हद तक बंगाल, बिहार व उत्तरप्रदेश में प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। क्रमशः ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा अपना साम्राज्य विस्तार कर लेने पर इस समय नये वातावरण में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से मुख्य रूप से चार विचारधाराओं ने पिछले कुछ शताब्दियों से आक्रान्त भारतीय धार्मिक वातावरण में सुधार लाने का प्रयास किया। आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद और वैदिक प्रथा की अपनी व्याख्या की, परन्तु भारत के जनमानस में दीर्घकाल से चली आ रही कई महत्त्वपूर्ण परम्पराओं को अस्वीकार किया तथा अपने कार्य को स्थायित्व देने के लिये आर्यसमाज की स्थापना की। राजाराम मोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशवसेन आदि ने ब्राह्मसमाज के माध्यम से उपनिषदों की अपने ढंग से व्याख्या की तथा आधुनिकता के नाम पर पाश्चात्य के तत्कालीन प्रभाव को अपनाने का प्रयास किया। इन दोनों विचारधाराओं का प्रभाव प्रधानतः अपने-अपने मुख्य केन्द्र के आसपास ही रहा। इसी प्रकार चैन्नई में थियोसोफिकल सोसायटी और मुम्बई में प्रार्थना समाज का प्रभाव समाज-सुधार, शिक्षा और कुछ सीमा तक देश की स्वाधीनता के लिये जनजागरण करने में रहा। इन सभी संगठनों ने अपनी कार्यप्रणाली में सनातन धर्म की विभिन्न आध्यात्मिक साधनाओं की परम्परागत विधियों को आंशिक रूप से ही अपनाया तथा बौद्धिक चिन्तन द्वारा निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया। फलस्वरूप सनातन-धर्म के प्रति खोयी हुई श्रद्धा के पुनरुद्धार का प्रश्न अछूता ही रह गया। किसी भी वस्तु की उपलब्धि के लिये उसे प्राप्त करने की विधि का पूर्णतः अनुसरण करना आवश्यक होता है। पूर्वपुरुषों द्वारा वस्तु-उपलब्धि करने की पद्धति परम्परा से जीवित रहती है, इसीलिये परम्परागत संस्कारों में ढले व्यक्ति ही आचार्य का स्थान ग्रहण कर सकते हैं। अतः भैरवी ब्राह्मणी, तोतापुरी जैसे योग्य व्यक्तियों को श्रीरामकृष्ण देव ने साधना के लिये गुरु रूप में ग्रहण किया था और शास्त्रोक्त विधि एवं परम्परा के अनुसार साधना की थी।

१८६७ ई. में श्रीरामकृष्ण देव बारह वर्षों की आध्यात्मिक-साधना के दौर के अन्त में पहुँचे। वे बारम्बार कहते थे – 'ईश्वर का अस्तित्व अनुभूति के आधार पर ज्ञातव्य है, वृथा तर्क करने से लाभ होने के स्थान पर हानि ही होती है। अतः मनुष्य को प्रयास करना चाहिये आध्यात्मिक साधना कर ईश्वर का दर्शन प्राप्त करे। इससे जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है और मानव जीवन सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर भी मिल जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वभाव के अनुसार साधना पद्धति अपनानी चाहिये। पुरुष व नारी का स्वरूप यथार्थतः दिव्य है। मनुष्य का पारस्परिक सम्बन्ध सेवा को पूजा की तरह करने से सर्वोत्तम रूप से स्थापित होता है और अतीत में किये गए पाप तथा गलतियों पर पश्चाताप न कर आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होने के लिये सकारात्मक प्रयास करना चाहिये।' आध्यात्मिक अनुभवों के आधार पर श्रीरामकृष्ण देव के श्रीमुख से निकली अमृतवाणी ही वर्तमान समय के मानव समाज के समस्याओं का उचित समाधान देने में सक्षम है। मनुष्य मात्र के कल्याण की इच्छा से श्रीरामकृष्ण देव अपनी आध्यात्मिक सम्पदा को प्रदान करने के लिये योग्य अधिकारी पाने के लिए व्याकुल हो उठे। वे सन्ध्या आरती के समय रोते हुए मन्दिर परिसर में मन की व्यथा को व्यक्त करते हुए ऊँचे स्वर से पुकारते और जगन्माता से प्रार्थना करते। अन्ततः जगन्माता की कृपा से जिज्ञासु एवं शुभ-संस्कार सम्पन्न युवा भक्त आने लगे। १८७५ ई. में ब्राह्मसमाज के अग्रणी नेता केशवचन्द्र सेन अपने मित्रों और अनुयायियों – विजयकृष्ण गोस्वामी, प्रतापचन्द्र मजुमदार, त्रैलोक्यनाथ सान्याल आदि के साथ पहुँचे। इन लोगों पर पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव होने के कारण वे लोग श्रीरामकृष्ण का ग्रामीणों जैसा व्यवहार, उच्च आध्यात्मिक भावावस्था एवं सनातन-धर्म की शिक्षा को वर्तमान के लिये व्यवहारिक बनाने की शिक्षा को समझ पाने में अक्षम हुए और इस प्राचीन तथा

अर्वाचीन के अद्भुत मेल को ग्रहण करने में भी असमर्थ रहे। केवल केशव सेन की श्रीरामकृष्ण के प्रति भक्ति एवं ठाकुर का उनके प्रति अद्भुत प्रेम देखकर साथ के लोगों, अधिकतर मध्यवित्त और बुद्धिमान, ने इस ओर ध्यान दिया। चूँकि केशव सेन ने न केवल अपनी वक्तृत्व कला और अन्य गुणों से सम्पन्न होकर ब्राह्मसमाज का नेतृत्व किया था, वरन् उस समय विदेशी औपनिवेशिक प्रभाव एवं विज्ञान के उठते प्रभाव को भी भारतीय मानस पर भारी होने से रोक लगाई थी। अत: उनके संस्पर्श में आये युवकों ने भी श्रीरामकृष्ण के सान्निध्य में आना आरम्भ किया।[१]

१८७९ ई. के अन्त में श्रीरामकृष्ण के पास आनेवालों में रामचन्द्र दत्त और इनके आत्मीय मनोमोहन मित्र थे। आगामी वर्ष सुरेन्द्रनाथ मित्र ने इन दोनों का अनुसरण किया। धीरे-धीरे ऐसे और भी कुछ श्रद्धालु भक्तों ने श्रीरामकृष्ण का सान्निध्य ग्रहण किया। श्रीरामकृष्ण से इन भक्तों को सनातन धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों का अर्थ समझने में सहायता मिली, जिससे उनलोगों की भक्ति-भावना एक दृढ़ आधार पर खड़ी हो सकी। ठाकुर के पावन चरित्र और उनके उपदेशों की उपयोगिता व प्रासंगिकता से प्रभावित होकर इन गृहस्थ-भक्तों ने श्रीरामकृष्ण को अवतार और अपने जीवन का इष्ट माना तथा आजीवन ठाकुर के उपदेशों का प्रचार करने का संकल्प लिया। परन्तु इन भक्तों का पारिवारिक जीवन का दायित्व और गृहस्थ जीवन-शैली के साथ आध्यात्मिक साधना का सामंजस्य हो पाना कठिन था। अत: ये लोग ठाकुर के द्वारा रखे गये आदर्श को दैनन्दिन जीवन में आत्मसात् करने तथा इसे परम्परा के रूप में भविष्य के लिये प्रतिष्ठित करने में असक्षम थे। श्रीरामकृष्ण यद्यपि इन श्रद्धालु भक्तों को पाकर प्रसन्न थे, परन्तु उन्हें आवश्यकता थी त्यागी, उत्साही, प्रगतिशील मानसिकतावाले युवाओं की, जो उनके व्यक्तित्व में समाये हुए भारत के स्वर्णिम अतीत को समझ सकें एवं उसी प्रकार और भी उन्नत भविष्य को अपने मानस-पटल पर अंकित कर सकें। आशानुरूप ऐसे युवा दक्षिणेश्वर आने लगे, जैसे नरेन्द्रनाथ दत्त (१८८१ ई.), राखाल चन्द्र घोष (१८८१ ई.), योगिन्द्रनाथ चौधरी, बाबूराम घोष और नित्य निरंजन घोष (१८८०-८१ ई.), तारकनाथ घोषाल (१८८०-८१ ई.), शरत् चन्द्र चक्रवर्ती तथा शशिभूषण चक्रवर्ती (१८८३ ई.), काली प्रसाद चन्द्र (१८८४ ई.), रखतुराम या लाटु (१८८० ई.), हरिनाथ चट्टोपाध्याय, गंगाधर गंगोपाध्याय और सारदाप्रसन्न मित्र और सुबोधचन्द्र घोष (१८८४ ई.), तथा हरिप्रसन्न चट्टोपाध्याय (१८८३ ई.)। लगभग ये सभी कलकत्ता के विद्यालयों व महाविद्यालयों में अध्ययनरत थे। इनके अतिरिक्त कुछ गृहस्थ-भक्त आये, जिनका विशेष योगदान रहा – बलराम वसु, महेन्द्रनाथ गुप्त (श्रीरामकृष्ण-वचनामृत के लेखक), गिरीशचन्द्र घोष, देवेन्द्रनाथ मजुमदार (गीतकार), अक्षयकुमार सेन (कवि)। गोपालचन्द्र घोष (अधिक उम्र होने के कारण 'बूढ़े गोपाल' के नाम से जाने जाते हैं) ने युवा भक्तों की तरह संन्यास ग्रहण किया था। रामकृष्ण-संघ की भावना को स्थूल रूप देने एवं इस दिव्य शक्तिसम्पन्न परम्परा को गतिशील बनाने में उपरोक्त युवा शिष्यों की भूमिका की चर्चा आरम्भ करने से पहले यह कह देना उचित होगा कि रामकृष्ण-संघ का श्रीगणेश श्रीरामकृष्ण ने स्वयं ही काशीपुर में चिकित्सा के लिये अवस्थान करते समय कर दिया था और परवर्ती काल में उनके यंत्र-स्वरूप स्वामी विवेकानन्द के नेतृत्व में ठाकुर के शिष्यों द्वारा यह कार्य आगे बढ़ा। यहाँ यह कहना उचित होगा कि एक बार ठाकुर दक्षिणेश्वर परिसर के समीपस्थ यदुलाल मल्लिक के उद्यान-भवन में नरेन्द्रनाथ को ले गये और स्पर्श करके उन्हें उच्च आध्यात्मिक स्तर पर ले गये, जहाँ नरेन्द्रनाथ के व्यक्तित्व को जाना जा सके। इस घटना के बारे में ठाकुर ने कहा था कि उस अवस्था में उन्होंने नरेन्द्रनाथ से उनके पूर्व इतिहास, निवास स्थान, विश्व में उनका विशेष कार्य और इस जीवन की अवधि, इन प्रश्नों के उत्तर पूछे। नरेन्द्रनाथ ने अपने मन की गहराइयों में जाकर ठाकुर के प्रश्नों का उपयुक्त उत्तर दिया था। इस प्रकार ठाकुर ने स्वयं की अनुभूति के आधार पर जाने गये तथ्यों से नरेन्द्रनाथ के उत्तरों का मेल पाया था। ईश्वरेच्छानुसार घटनाक्रम चलता रहा और विश्व युगोपयोगी मार्ग-दर्शन पाकर लाभान्वित हुआ।

१९१० में वायसराय मिन्टो की पत्नी बेलूड़ मठ देखने आई थीं। उनके यह कहने पर कि रामकृष्ण मठ की स्वामी विवेकानन्द ने स्थापना की है, तो स्वामी शिवानन्दजी जो उन्हें मठ परिसर दिखा रहे थे, ने तुरन्त उत्तर दिया कि रामकृष्ण संघ की सृष्टि ठाकुर ने अपने गले के रोग की चिकित्सा हेतु काशीपुर में अवस्थान करते समय की थी। ठाकुर ने नरेन्द्रनाथ एवं अन्य अन्तरंग-भक्तों को इसकी स्थापना और संचालन करने के बारे में निर्देश भी दिये थे।[२] **(क्रमशः)**

सन्दर्भ ग्रन्थ – **१.** The history of Ramakrishna Math & Mission, page 3-5 **2.** 6,7

रामकृष्ण मिशन की १२५वीं वर्षगाँठ पर विशेष

रामकृष्ण मिशन का सेवाव्रत

स्वामी प्रभानन्द

सह-संघाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन
बेलूड़ मठ, हावड़ा

श्रीरामकृष्ण पवित्रता, नि:स्वार्थता, प्रेम तथा करुणा के संयुक्त अवतार हैं। उनकी ही विगलित धारा श्रीमाँ सारदा का नाम धारण कर मानव समाज के द्वारों पर शान्ति, स्नेह, शक्ति, विश्वास वितरण करती हुई चली आ रही है। 'अनन्त ज्ञान, अनन्त प्रेम, अनन्त कर्म, अनन्त जीवों के प्रति दया'[१] के सागर श्रीरामकृष्ण के अन्यतम प्रतिरूप स्वामी विवेकानन्द, उसी धारा के भागीरथ-सदृश वाहक व प्रचारक हैं। उनके शंख-निनाद से दिग्-दिगन्तर के मानवों में जागरण आ रहा है। उनमें से कई लोगों के जीवन के आंगन में जल उठी है आशा की नई दीप। अर्थात् श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द एक ही भावादर्श के तीन रूप हैं। जिस भावधारा के प्रवर्तक श्रीरामकृष्ण, उसकी शिल्पी श्रीमाँ सारदा एवं उसके प्रचारक स्वामी विवेकानन्द हुए। उन्होंने एक आकर्षक और युगोपयोगी आदर्श प्रस्तुत किया। एक ओर जहाँ इसकी जड़ें पारम्परिक वेदान्त में निहित हैं, किन्तु इसके पत्र-पल्लव आधुनिक वैज्ञानिक चेतना, तर्कसंगतता और संगठन-पद्धतियों से समृद्ध है, जो समस्यासंकुल मानव समाज की दिशा है।

इन दिव्यत्रयी के जीवन साधना का प्राथमिक प्रमाण यह है कि उनका जीवन विश्व कल्याण के लिए समर्पित है। यह देखा जा सकता है कि काशी विश्वनाथ के दर्शनाभिलाषी श्रीरामकृष्ण देवघर अंचल के दुर्भिक्षपीड़ित दुर्दशाग्रस्त मनुष्यों की सेवा के लिए समर्पित हैं। उन्होंने अपने सहयात्री मथुरामोहन से कहा कि वे इन दरिद्र पीड़ित विश्वनाथों को पेट भरकर भोजन करायें, अंग पर वस्त्र और सिर पर तेल लगाने की व्यवस्था किये बिना वे काशी में विश्वनाथ के दर्शन नहीं करेंगे।[२] तभी तो कैन्सर रोग से क्रान्त श्रीरामकृष्ण के मुख से सुना जा सकता है कि ''मैं साबुदाना खाकर भी दूसरों का उपकार करूँगा।''[३] श्रीमाँ ने भी बाल्यावस्था से ही अकाल पीड़ित लोगों की सेवा में किस प्रकार स्वयं को नियोजित किया है, उससे हम सभी अनजान नहीं हैं। दुखियों की सेवा-यत्न से व्यग्र हो श्रीमाँ ने क्षोभ प्रकट करते हुए कहा था – ''कभी-कभी मैं सोचती हूँ कि यदि इतना-सा शरीर न हो, यदि यह बहुत बड़ा शरीर होता, तो कितने जीवों का कल्याण होता !''[४] स्वामीजी उत्सुक हो अपने शब्दों में कहते हैं – 'निखिल आत्मा का समष्टि रूप में जो भगवान विद्यमान हैं – एकमात्र जिस ईश्वर में मैं विश्वास करता हूँ, उस ईश्वर की पूजा के लिए जो मैं बार-बार जन्म ग्रहण करूँ और हजारों पीड़ाएँ झेलूँ और सर्वोपरि मेरे उपास्य प्रभु पापी-नारायण, तापी-नारायण, सभी जातियों के दरिद्र-नारायण। ये ही विशेष रूप से मेरे आराध्य हैं।[५]' ऐसा देखा गया है कि १८९८ में वे कलकत्ता में प्लेग के रोगियों की सेवा के लिए बहु आकांक्षित बेलूड़ मठ को बेचना चाहते थे।

श्रीरामकृष्ण मठ,चैन्नई

श्रीरामकृष्ण के जीवन में निहित महान आदर्शों को संसार के कल्याण के लिए प्रयोग करने और जन-साधारण के मध्य प्रचार का संकल्प कर स्वामी

विवेकानन्द ने बलराम बोस के घर पर एक सभा श्रीरामकृष्ण के त्यागी और गृहस्थ भक्तों के साथ की। यह आज से एक सौ पच्चीस वर्ष पहले की बात है। वह दिन था १ मई, १८९७। उस बैठक में उन्होंने रामकृष्ण मिशन नामक एक संघ की स्थापना का प्रस्ताव रखा। सभा में रिकॉर्ड किए गए कार्य-विवरणों के एक अशं में लिखा हुआ है – 'परमहंस देव के विचारों, उपदेशों और आदर्शों के प्रचार-प्रसार हेतु आन्दोलन का विस्तार हो तथा उस सम्बन्ध में एक संघ बनाने की आवश्यकता वहाँ उपस्थित लोगों ने अनुभव किया, क्योंकि संघ के माध्यम से कार्य का सुचारु रूप से संचालन सम्भव हो सकेगा। उन्होंने निश्चय किया कि कलकत्ता में एक केन्द्र स्थापित करने की तत्काल आवश्यकता है। वहाँ लोग नियमित रूप से मिलकर चर्चा करेंगे, जन-साधारण के मध्य परमहंस देव के उपदेशों व आदर्शों के प्रचार-प्रसार का उपाय निकालेंगे। यह संगठन भारतवर्ष में अन्यत्र तथा अमेरिका व इंगलैंड में स्थापित समभावापन्न प्रतिष्ठानों के साथ संवाद करेगा और संघ के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए उनके साथ विचारों का आदान-प्रदान करेगा।'[६] यह विवरण स्वामीजी प्रदत्त दीर्घ भाषण का अति संक्षिप्त रूप है। अपने भाषण के अन्तिम भाग में स्वामीजी ने कहा था, 'जिनके नाम पर हम संन्यासी हुये हैं, जिन्हें आप अपने जीवन के आदर्श के रूप में स्वीकार कर गृहस्थाश्रम में कार्य कर रहे हैं, उनके देहावसान के बीस वर्षों के भीतर ही उनका पवित्र नाम और अद्भुत जीवन प्राच्य व पाश्चात्य जगत में आश्चर्य रूप से प्रसार किया है, यह संघ उन्हीं के नाम पर स्थापित होगा। हम सब प्रभु के दास हैं। कृपया आप सभी इस कार्य में सहयोग करें।'[७] स्वामीजी का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया गया। श्रीरामकृष्ण और उनके उपदेशों के प्रति जिनकी श्रद्धा व प्रीति थी, उनलोगों को सम्मिलित कर गठित हुआ एक साधारण समिति अथवा एसोसियेशन। ५ मई (१८९७) को हुई दूसरी सभा में इस समिति अथवा एसोसियेशन का नाम 'रामकृष्ण मिशन' रखा गया।

स्वामी विवेकानन्द द्वारा निर्देशित रामकृष्ण मिशन के उद्देश्य के विषय में कहा गया – 'मानव के हितार्थ श्रीश्रीरामकृष्ण द्वारा प्रतिपादित उन सभी सिद्धान्तों और उनके जीवन में जो प्रतिपादित हुए हैं, उनका प्रचार एवं मनुष्य के दैहिक, मानसिक और पारमार्थिक उन्नति के लिए जो सभी तत्त्व प्रयुक्त होते हैं, उन विषयों में सहायता करना इस मिशन या अभियान का उद्देश्य है।'[८] रामकृष्ण मिशन अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए शान्ति से नि:स्वार्थ भाव से जाति-धर्म से निरपेक्ष हो पृथ्वी के विभिन्न प्रान्तों में असंख्य मनुष्यों की नाना भाव से सेवा करते हुये चला आ रहा है। इस महान सेवा-यज्ञ के पीछे का एक आदर्श सूत्र है – 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' – अपनी मुक्ति और जगत के कल्याण के लिये।

विचारणीय आदर्श सूत्र के दो पक्ष हैं – आत्ममुक्ति के लिए अनुशीलन और विश्व कल्याण का प्रयत्न। दोनों पक्ष 'च' शब्द द्वारा युक्त हैं। अर्थात् आत्ममोक्ष और परहित व्रत की साधना, दोनों एक साथ साध्य हैं। वे परस्पर एक-दूसरे के परिपूरक हैं, विरोधी नहीं। आदर्श वाणी में यह निर्देशित हुआ है कि प्रवर्तक अपनी मुक्ति और जगत के हित के मध्य समुच्चयता हेतु सचेत रहेगा तथा इस मार्ग पर अग्रसर साधक मुक्तिप्राप्ति के पूर्व और बाद में विश्व-कल्याण के लिए समर्पित रहेगा। यह श्रीमद्भागवतम् में वर्णित रन्तिदेव की प्रार्थना को प्रतिध्वनित करता है।[९] बोधिसत्त्व आदर्श के 'महाकरुणा' की भावना को अनुध्वनित करता है।[१०] यहाँ वास्तव में बौद्ध धर्म के नैतिक आदर्श और वेदान्त के आध्यात्मिक आदर्श मिलते हैं।[११] इस आदर्श का पालन करने से साधक का नैतिक जीवन पवित्र और दृढ़ होगा; और आध्यात्मिक भावनाओं के द्वारा अनुप्राणित हो यह आदर्श जीवन में पूर्ण रूप से उतार लेने से उसके सामने मोक्ष द्वार खुल जायेंगे। स्वामीजी ने अपने शिष्य शरत्चन्द्र से कहा था, दूसरे का कल्याण करना आत्मविकास का एक मार्ग है। यह भी जानना, यह एक प्रकार की ईश्वर की साधना है। इसका भी उद्देश्य है – आत्मविकास।'[१२]

रामकृष्ण-भावान्दोलन की नीति है – व्यष्टि की उन्नति के द्वारा समष्टि की उन्नति। स्वामीजी ने कहा था – 'But the basis of all systems, social or political, rests upon the goodness of men.'[13]

महान चरित्रवान लोगों की सृष्टि हेतु आत्म-मुक्ति और जगत् के हित के लिए संयक्त प्रयास ही व्यापक और सार्वभौमिक रूप से मान्यता प्राप्त मार्ग है। विवेच्य आदर्श ही श्रीरामकृष्ण के शब्दों में मनुष्य को 'मानहुँश' सजग करने में सक्षम है।

जगत् के हित के लिए 'शिवज्ञान से जीवसेवा' का

उपदेश श्रीरामकृष्ण के श्रीमुख से ही निकला है। उस दिन वहाँ काफी लोग उपस्थित थे। किन्तु सेवादर्श के इस महान विचार ने केवल नरेन्द्रनाथ के हृदय को ही आन्दोलित किया। उन्होंने सोचा था कि यदि यह ईश्वर की इच्छा है, तो वे इसे जगत में व्यावहारिक रूप से प्रकट करने का प्रयास करेंगे। स्वामी विवेकानन्द ने समझा था कि 'शिवज्ञान से जीवसेवा' अद्वैत वेदान्त का दार्शनिक आधार है। जो अद्वैत वेदान्त अब तक केवल आध्यात्मिक विकास के लिए प्रयोग किया जाता था, उन्होंने उसे जीवन की विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिये प्रयोग करने की पहल की। उन्होंने देखा, 'इस भारत भूमि में आम आदमी की आत्मनिर्भरता की भावना को कभी भी विकसित होने नहीं दिया जाता।'[१४] उन्होंने इस देश के जनसाधारण के जागरण के लिए, जनसाधारण को आत्मनिर्भर बनाने के लिए अद्वैत वेदान्त में निहित प्राणप्रद और वरद भावना का प्रचार किया। इस प्रकार स्वामीजी ने अद्वैत वेदान्त के आलोक में आत्म-मुक्ति और विश्व-कल्याण के माध्यम से मनुष्य के सामग्रिक कल्याण की परिकल्पना की। चूँकि द्वैत और विशिष्टाद्वैत में आस्था रखनेवाले भी जीवात्मा की अनन्त शक्ति को स्वीकार करते हैं।[१५] इसलिए उनके भी विवेच्य आत्ममुक्ति और विश्वकल्याण के इस आदर्श को उत्साहपूर्वक स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं। उनके शब्द थे – '**अभीरभीरिति घोषयति वेदान्तडिण्डिमः**।''[१६] यह दुंदुभि ध्वनि जगद्वासियों के हृदयग्रन्थि को भेद देगा, यही उनका स्वप्न था।

उनके इस स्वप्न को साकार करने की दिशा में प्रयत्नशील हुये थे उनके गुरु भाई और अनुयायी विशेष रूप से स्वामी अखण्डानन्द जी, जिन्होंने पहली बार मुर्शिदाबाद के दूरस्थ ग्राम महुला अंचल में सर्वप्रथम सेवायोग का अनुष्ठान एक साथ लगभग तीन महीने तक किया था एवं इसके माध्यम से महुला ग्राम को तीर्थ बनाया। रामकृष्ण संघ के इस सेवातीर्थ के इतिहास को थोड़ा सा याद करना, यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगा।

संयोग से परिव्राजक स्वामी अखण्डानन्द एक बार घूमते-घूमते मुर्शिदाबाद जिले के अकाल ग्रस्त महुला क्षेत्र में भूख और बीमार लोगों के एक समूह के पास पहुँच गये। उन्होंने दृढ़ता से अनुभव किया कि उनके लिए कुछ करना होगा। कपर्दकशून्य संन्यासी स्वामी अखण्डानन्द जी श्रीश्रीठाकुर की छवि के सामने दुर्भिक्षपीड़ित जनसाधारण के लिए अपने कातर नयनों से रोते-रोते प्रार्थना करने लगे। कुछ दिनों बाद उन्हें अपनी प्रार्थना का उत्तर मिला। उन्होंने अनुभव किया कि जैसे श्रीश्रीठाकुर उनसे कह रहे हैं – 'देखो न ! क्या होता है?'[१७] विभिन्न लोगों के अनुत्साहित करने के अतिरिक्त भी उन्होंने निश्चित किया कि वे अकाल पीड़ितों को असहाय स्थिति में छोड़कर नहीं जायेंगे, अपितु उनकी समस्याओं का समाधान करेंगे। महाबोधि सोसायटी के सचिव चारुचन्द्र बोस ने सोसायटी की ओर से कुछ आर्थिक सहायता करने का प्रस्ताव रखा। इधर स्वामीजी ने उन्हें प्रोत्साहित करते हुए लिखकर भेजा – 'शाबाश बहादुर ! वाहे गुरुजी की फतह !! कार्य करते जाओ, जितने पैसे लगेंगे मैं तुम्हें दूँगा।''[१८] राहत कार्यों का पहला सेवा केन्द्र महुला ग्राम में मृत्युंजय भट्टाचार्य के चण्डी मंडप में खोला गया। रामकृष्ण मिशन की स्थापना

चण्डी मण्डप, महुला पुराना भवन

चण्डी मण्डप, महुला नया भवन

के ठीक दो सप्ताह बाद १५ मई, १८९७ का दिन था। मिशन ध्वज के तले आयोजित यह पहला संगठित सेवा-कार्य था। स्वामी अखण्डानन्द जी के पत्र के अनुसार यह श्रीरामकृष्ण मिशन द्वारा आयोजित पहला प्रकाश्य सेवाव्रत था। स्वामीजी ने अपने गुरुभाई स्वामी अखण्डानन्द को लिखा – ''यही तो पूजा है, नर-नारी-शरीरधारी प्रभु की पूजा और जो कुछ भी है 'नेदं यदिदमुपासते' यह तो प्रारम्भ है, इस प्रकार क्या हम भारतवर्ष – पृथ्वी को आच्छादित नहीं कर पायेंगे? प्रभु की क्या महिमा है !''[१९]

'दरिद्रदेवो भव', 'मूर्खदेवो भव' मंत्र से प्रेरित होकर स्वामी अखण्डानन्द जी ने दीन-मूर्ख-अज्ञानी-कातरों की सेवा को ही अपना परम धर्म मान लिया था। उन्होंने प्रेम का प्रदीप जलाकर सहानुभूतिहीन समाज के अन्धेरे असहायों के जीवन में नई आशा का संचार किया। स्वामी अखण्डानन्द जी को

रामकृष्ण मिशन में सेवा का अग्रदूत कहा जा सकता है।

स्वामीजी की इच्छा थी कि स्वामी अखण्डानन्द जी के नेतृत्व में व्यापक स्तर पर राहत-कार्य संगठित होकर हो और उसी के साथ रामकृष्ण-भावाधारा का भी प्रसार हो। आलमबाजार मठ से भेजी गई कार्य-विवरणी को पढ़कर स्वामीजी ने ११ जुलाई, १८९७ को मठ में लिखा – 'अखण्डानन्द महुला में अद्‌भुत कार्य कर रहे हैं, किन्तु उनकी कार्य प्रणाली अच्छी नहीं लगती। ऐसा लगता है कि वे एक ही ग्राम में अपनी सारी ऊर्जा नष्ट कर रहे हैं, वह भी मात्र चावल बाँटने के कार्य में। इस चावल-वितरण के द्वारा सहायता करने के साथ ही साथ किसी प्रकार का प्रचार कार्य भी हो रहा है – कहाँ, ऐसा तो नहीं सुन रहा हूँ। जन-साधारण को यदि आत्मनिर्भरशील होना नहीं सिखाया जा सकता, तो जगत के समस्त ऐश्वर्य को भी भारत के एक छोटे-से गाँव में डाल देने पर भी वह पर्याप्त नहीं होगा।' स्वामीजी का यह पत्र १६ जुलाई को प्राप्त कर स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने अगले दिन महुआ को (स्वामी अखण्डानन्द को) पत्र लिखा : 'कल मुझे स्वामीजी का एक पत्र मिला। उन्होंने लिखा है – Feminine relief (अकाल निवारण) के साथ ही साथ preaching (प्रचार) भी हो, अन्यथा किसी भी तरह से न हो।'[२०] कहने की आवश्यकता नहीं कि स्वामी अखण्डानन्द जी ने स्वामीजी के इस आदेश को व्यवहार में उतारा। इस बीच उनकी आत्मा मातृ-पितृहीन कुछ दुखी अनाथ बच्चों के लिये रो उठी। उन्हें देखनेवाला कोई नहीं ! उन्होंने महुला से आलमबाजार मठ को लिखकर भेजा – 'मैं यहाँ एक स्थायी मठ खोलने की चेष्टा कर रहा हूँ। मैंने स्वामीजी को योजना आदि लिखकर भेजा था। उन्होंने प्रोत्साहित किया था।'[२१] स्वामीजी ने अपने २४ जुलाई के पत्र में लिखा था – 'अनाथाश्रम के सम्बन्ध में आपका अभिप्राय अति उत्तम है और श्रीमहाराज (श्रीगुरु महाराज श्रीश्रीठाकुर) निश्चय ही इसे शीघ्र पूर्ण करेंगे। एक स्थायी केन्द्र जिससे स्थापित हो, इसके लिए प्राण-पण से प्रयास करें।'[२२] नवम्बर मास में अकाल राहत-कार्य की समाप्ति के बाद ही स्वामी अखण्डानन्द जी ने कुछ गरीब अनाथ बच्चों को साथ लेकर एक अनाथ आश्रम की स्थापना की। १० अक्तूबर, १८९७ के एक पत्र में, स्वामीजी ने उन्हें सेवायोग के दार्शनिक आधार की रूपरेखा प्रदान की और धर्म के सम्बन्ध में अनाथालय के दृष्टिकोण को यह लिखकर निर्देशित किया – ''तुम्हें मुस्लिम बालकों को भी लेना होगा, परन्तु उनके धर्म को कभी दूषित नहीं करना। तुम्हें केवल यही करना होगा कि उनके भोजन आदि प्रबन्ध अलग कर दो और उन्हें शुद्धाचरण, पुरुषार्थ, परहित में श्रद्धापूर्वक तत्परता की शिक्षा दो। यही धर्म है। अपने जटिल दार्शनिक सिद्धान्त को कुछ समय के लिये अलग रख दो।

''... हिन्दू-मुसलमान, ईसाई आदि सभी धर्मों के बच्चों को लेना, लेकिन धीरे-धीरे आरम्भ करना। अर्थात् यह ध्यान रखना होगा कि उनका खान-पान आदि थोड़ा अलग हो; और सार्वभौमिक धर्म का ही उन्हें उपदेश देना।' फरवरी, १८९८ में अनाथ बालकों की संख्या ३५ थी। इस वर्ष के अन्त तक महुला गाँव के मृत्युंजय भट्टाचार्य के विद्यालय में अनाथालय चला था। कार्यकर्ताओं में स्वामी अखण्डानन्द जी, ब्रह्मचारी सुरेन (स्वामी सुरेश्वरानन्द) और दीनानाथ चौबे सम्मिलित थे। उस समय प्रमदादास मित्र को लिखे १९ अक्तूबर के एक पत्र में आश्रम जीवन की एक खण्डित चित्र सामने आई। स्वामी अखण्डानन्द जी ने लिखा है – ''मैं अनाथ बच्चों को लेकर प्रतिदिन संध्या के समय लगभग आधे घण्टे तक भगवद्-गुणानुकीर्तन करता हूँ एवं वैदिक रीति से तेज-बल आदि जो हमारे अन्दर उद्‌भासित हो, उसके लिये प्रार्थना करता हूँ। उसके बाद सदा सर्वदा ही बालकों के नैतिक और धर्मजीवन लाभ के लिए उन्हें सत्कर्मोपयोगी बनाने की चेष्टा कर रहा हूँ।[२३]

स्वामी विवेकानन्द स्वयं श्रीरामकृष्ण के जीवन और वाणी के आलोक में उद्‌भासित इस सेवायोग के प्रवर्तक हैं। इस सेवाव्रत का निर्देशन और नियंत्रण मुख्य केन्द्र आलमबाजार से स्वयं स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने किया था और स्वामी अखण्डानन्द जी ने इस सेवायोग को अकाल से पीड़ित लोगों पर प्रभावी ढंग से प्रयोग कर एक नया इतिहास रच दिया। मुर्शिदाबाद के सुदूर एक छोटे-से गाँव में जो सेवा कार्य की सृष्टि की गई थी, उसकी तरंगों ने रामकृष्ण संघ की परिधि के भीतर प्रबल आँधी लाई है और उस अंधड़ के बाहरी आवेग के अन्तर्गत राहत-कार्य का विस्तार हुआ था। समाज के विभिन्न स्तरों पर इसकी प्रतिक्रिया हुई थी। स्वामी त्रिगुणातीतानन्द जी ने १५ अगस्त से वर्तमान बांग्लादेश के दिनाजपुर के विरोल ग्राम में अकाल पीड़ितों के मध्य राहत-कार्य का आयोजन किया था। स्वामी विरजानन्द ने स्वयं को बिहार के देवघर में

अकाल पीड़ित लोगों की सेवा के लिए समर्पित कर दिया। इस समय स्वामी प्रकाशानन्द और मठ के कुछ सदस्यों ने १२ अक्तूबर से ८ जनवरी तक दक्षिणेश्वर में विपन्न लोगों के बीच सेवा कार्य किया। स्वामी अखण्डानन्द और स्वामी सदानन्द ने भागलपुर जिले के घोगा में बाढ़ पीड़ितों की सेवा की। कलकत्ता में वर्ष १८९८ और १८९९ में भगिनी निवेदिता और स्वामी सदानन्द ने प्लेग से ग्रस्त रोगियों की सेवा का नेतृत्व किया। वर्ष १८९९ में स्वामी कल्याणानन्द ने राजपुताना के किशनगढ़ में बड़े पैमाने पर अकाल-राहत कार्य किया। वर्ष १९०० में स्वामी सुरेश्वरानन्द ने मध्य प्रदेश के खण्डवा में अकाल राहत अभियान चलाया। संक्षेप में, महुला में अनुष्ठित तीन वर्षों के राहत कार्य के दौरान भारत के विभिन्न भागों में संन्यासियों द्वारा चलाए गये राहत कार्यों ने जैसे एक प्रबल हलचल पैदा कर दी। उसी प्रकार संघ के बाहर भी जन-समाज को भी प्रभावित किया था, इसका कुछ संकेत समकालीन समाचार पत्रों से मिल सकता है। जैसा कि 'Indian Social Reformer' ने ९ अक्तूबर, १८९८ को टिप्पणी की – we consider a matter for congratulation that a Hindu Sannyasin, should invest old ideas with a new significance such as all commend itself to the spirit of the times.'[24]

रामकृष्ण मिशन के सेवा योग की विजय-यात्रा इस प्रकार आरम्भ हुई और कई बाधाओं का सामना करते हुए अबाध गति से जारी है। स्वाधीनता संग्राम के लिए संघ को कई बार सरकार के सन्देह के घेरे में आना पड़ा है। देश विभाजन, साम्प्रदायिक दंगे, अकाल, विपुल जनसंख्या, गरीबी के गर्त में डूबे लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सीमित संसाधनों के बाद भी संघ के सेवा की गति अभी भी जारी है। क्योंकि आदर्शों का पालन करना ही संघ की जीवन-शक्ति है। इसी निष्ठा के साथ युक्त है, तीन हजार वर्ष की विचारधारा, जो कि श्रीरामकृष्ण द्वारा परीक्षित है।

वर्तमान में जैसे-जैसे सेवाओं का क्षेत्र बढ़ा है, वैसे-वैसे ही रामकृष्ण मिशन के केन्द्रों की संख्या भी बढ़ी है। स्वामी अखण्डानन्द जी के समय से लेकर वर्तमान काल तक एक ही तरह से प्रतिवर्ष देश के विभिन्न भागों में चाहे वह प्राकृतिक आपदा हो या मानव निर्मित आपदा, राहत एवं पुनर्वास का कार्य चल रहा है। स्वामीजी प्राथमिक आवश्यकताओं के साथ-साथ सभी को स्वतन्त्र और आत्मनिर्भर बनने में सहायता करना चाहते थे। उसके लिए प्रयोजनीय शिक्षा, जो समाज की आर्थिक उन्नति के साथ-साथ महिलाओं के जीवन स्तर को सुधारने में भी सहायता करे। स्वामीजी ने मनुष्य-निर्माणकारी और चरित्र-निर्माणकारी शिक्षा पर बल दिया है। इस बात को ध्यान में रखते हुए, रामकृष्ण मिशन औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से बच्चों से लेकर वयस्कों तक, सभी के लिए शिक्षा का सुयोग देने का प्रयास करता है, जहाँ लाखों छात्रों को अध्ययन करने का अवसर मिलता है और उन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर जो सम्मान अर्जित किया है, वह उनकी शिक्षा की उच्च गुणवत्ता का प्रमाण है।

रोगप्रतिरोधक और आरोग्यक्षम चिकित्सा के क्षेत्र में भी सेवाओं की वृद्धि हुई है। रामकृष्ण संघ कई शताधिक शैय्या विशिष्ट अस्पतालों, औषधालयों, मोबाइल चिकित्सा-इकाइयों और चिकित्सा शिविरों के माध्यम से हजारों रोगियों की सेवा करके धन्य हुआ है। साथ ही तीन वृद्धाश्रमों में शताधिक मनुष्यों की सेवा निरन्तर चल रही है। देश के विभिन्न प्रान्तों में ग्रामीण और आदिवासी जनता के बीच शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में संघ की सेवा उल्लेखनीय है। लोक शिक्षा परिषद के माध्यम से शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक विकास के लिए संघ अनवरत प्रयासरत है। इसके अलावा रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य, भारतीय संस्कृति के पारम्परिक विषयों, शास्त्रों व पत्रिकाओं को विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित करके रामकृष्ण संघ मानव जाति के आध्यात्मिक विकास के लिए भी प्रतिबद्ध है।

सभी वर्गों के लोगों में उनके लिये उपयोगी आध्यात्मिक भाव का प्रचार-प्रसार करना रामकृष्ण संघ की सेवा का एक अन्य विशेष अंग है। यह कार्य रामकृष्ण मिशन के भारत और बाहर के विभिन्न केन्द्रों के द्वारा ठीक से किया जा रहा है। भारतवर्ष में छोटे-छोटे बालक संघ, युवक संघ और अध्ययन समूहों आदि के द्वारा नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यबोध शिक्षा प्रदान की जाती है। साथ ही रामकृष्ण संघ युवा सम्मेलन और भक्त सम्मलेन के माध्यम से अपने भाव-प्रचार का प्रयास सदैव कर रहा है। वर्तमान समय में वैज्ञानिक विकास के कारण घर बैठे ही ऑनलाइन माध्यम से देश-विदेश में बैठे अनेक लोगों में सकारात्मक शिक्षा एवं अध्यात्म का प्रसार करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

रामकृष्ण संघ की सीमित संख्या में साधु-ब्रह्मचारी और

स्वयंसेवक सम्पूर्ण देश के लोगों की सेवा करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। इसलिए रामकृष्ण भावधारा से जुड़े कई आश्रम, जो संघ के शाखा केन्द्र नहीं हैं, उन्हें 'रामकृष्ण-विवेकानन्द भावप्रचार परिषद' का गठन कर इसके अन्तर्गत एक साथ संगठित किया गया है। यह मानो रामकृष्ण मिशन की स्थापना की सभा में गृहस्थ भक्तों को स्वामीजी का आह्वान है – 'आपलोग इस कार्य में सहायता करें।' श्रीरामकृष्ण-भक्तमंडली द्वारा संचालित ऐसी कई परिषदों ने सैकड़ों केन्द्रों के माध्यम से भारत के गाँवों और शहरों के कोने-कोने में लोगों की सेवा के लिए स्वयं को समर्पित किया है।

स्वामी विवेकानन्द के सेवायोग का आदर्श-सूत्र एक सौ पच्चीस वर्षों की कालाग्नि में परीक्षित और परिष्कृत है। विभिन्न परिस्थितियों में विवेचित, प्रयुक्त और परीक्षित किया गया यह आदर्श पृथ्वी के विभिन्न अंचलों के कई प्रतिष्ठानों को अनुप्राणित कर रहा है। परिष्कृत चरित्र के कई लोगों के हृदय में उज्ज्वल दीप प्रज्वलित कर रहा है। सेवा की लौ एक दीप से दूसरे दीप में संचारित हो रही है। यह ज्योति मानव के पथ पर प्रकाश की दिशा है, भविष्य के लोगों की आशा और उनका विश्वास है। ○○○

(इस लेख का अनुवाद उत्कर्ष चौबे, वाराणसी ने किया है।)

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. स्वामी विवेकानन्द वाणी ओ रचना, उद्बोधन कार्यालय, कलकत्ता, २०१२, ६ठा खण्ड, पृ. ७३ **२.** स्वामी सारदानन्द, 'गुरुभाव–पूर्वार्ध', श्रीश्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग, उद्बोधन कार्यालय, २००६, १म भाग, पृ. १२४ **३.** स्वामी प्रभानन्द, श्रीश्रीमायेर पदप्रान्ते, उद्बोधन कार्यालय, २०००, पृ. ५६९ **४.** स्वामी पूर्णात्मानन्द, श्रीश्रीमायेर पदप्रान्ते, खं.२,पृ.३७३ **५.** स्वामी विवेकानन्द, पत्रावली, पृ.५६९ **६.** स्वमी प्रभानन्द, रामकृष्ण मठेर आदिकथा, उद्बोधन कार्यालय, २००१, पृ. १५०-५१ (अंग्रेजी में लिखा हुआ - "Proceedings of the Meeting" का अनुवाद) **७.** चक्रबर्ती, शरच्चन्द्र, स्वामी-शिष्य-संवाद, उद्बोधन कार्यालय , १९८९, पृ.३७ **८.** रामकृष्ण मठेर आदि कथा, पृः १५१, ५ मई,१८९७ को गृहीत प्रस्ताव का एकांश – "The object of this society is to propagate the principles propounded by Shri Ramakrishna and illustrated by His own life for the benefit of humanity and to help mankind in the practical application of those principles in their intellectual and physical needs." (उदबोधन, १९तम वर्ष, चतुर्थ संख्या, वैशाख १४०४, पृ.१०१, पाद टीका) **९.** रन्तिदेव ने प्रार्थना किया था : ''मैं भगवान के निकट अणिमादि अष्टसिद्धि की कामना या मोक्ष की कामना नहीं करता। मैं चाहता हूँ – सभी प्राणियों का हृदयगत होकर मैं उनकी वेदना का अनुभव कर सकूँ और उनकी पीड़ा को दूर कर सकूँ। (श्रीमदभागवतम् ९/२१/१२) **१०.** महाकरुणा की भावना अनुप्राणित होकर अवलोकितेश्वर ने निर्वाण की अपनी इच्छा को त्याग कर समूचे प्राणियों की मुक्ति के लिये प्रयास किया था। वह अन्य समस्त जीवों के उद्धार से पहले अपने निर्वाण को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। **११.** डॉ. राधाकृष्ण ने लिखा है : "To develop his theory Buddha had only to ... set aside the transcendental aspect as being indemonstrable to thought and unnecessary to morals, and emphasize the ethical univeraslism of the Upanishads. (Indian Philosophy, vol.१,१९७१, p.३६०) **१२.** वाणी ओ रचना, २०१२, ९म खण्ड, पृ.५१ **१३.** The Complete Works of Swami Vivekananda, Advaita Ashrama, Kolkata, २०२१ vol.5, p१८४ **१४.** वाणी ओ रचना, ७म खण्ड, पृ. २५३ **१५.** द्र. यही, पृ. २५५ **१६.** यही, पृ. २५० **१७.** स्वामी अन्नदानन्द, स्वामी अखण्डान्द, उद्बोधन कार्यालय, २०१४, पृ. १२६ **१८.** यही, पृ. १२७ **१९.** पत्रावली, पृः ५५ **२०.** स्वामी ब्रह्मानन्देर पत्र सम्भार, उद्बोधन कार्यालय, २०१४, पृ.३४ **२१.** 'स्वामी अखण्डानन्द जन्म सार्धशतवर्ष स्मरणिका', प्राक्तनी संसद, सारगाछी, रामकृष्ण मिशन उच्च विद्यालय, मुर्शिदाबाद, २०१५,पृ.६७ **२२.** पत्रावली, पृ. ५८० **२३.** स्वामी अखण्डानदेर पत्रसमग्र, उद्बोधन कार्यालय, १४२२, पृ. १०५ **२४.** द्र. 'स्वामी अखण्डानन्द : जन्म सार्धशतवर्ष स्मरणिका', पृ. ६७

कविता

सदा शुभ हो ! सदा शुभ हो !

रामकुमार गौड़, वाराणसी

प्रभु ! इस वेश में आना, सदा शुभ हो, सदा शुभ हो।
त्याग और सेवा सिखलाना, सदा शुभ हो, सदा शुभ हो ।।
विराजें सारदा बाएँ, विवेकानन्द जी दाएँ।
रूप चिन्मय यह दिखलाना, सदा शुभ हो, सदा शुभ हो।।
सहज तन्मय समाधी में, बाहरी ज्ञान से विरहित ।
दिव्य सुख-सिन्धु लहराना, सदा शुभ हो, सदा शुभ हो ।।
भक्तजन आरती गाते, विमल सुख हृदय में पाते।
प्रभू को चँवर डुलवाना, सदा शुभ हो, सदा शुभ हो ।।
करो तुम हृदय में डेरा, तभी छूटेगा 'मैं-मेरा'।
मुझे भी शरण में लेना, सदा शुभ हो, सदा शुभ हो।।
माँ सारदा का प्रेम, बरबस खींचता हमको ।
संग स्वामीजी को लाना, सदा शुभ हो, सदा शुभ हो।।
हमें दो भक्ति की भिक्षा, विकल मन की यही इच्छा।
प्रभु का नाम-गुण गाना, सदा शुभ हो, सदा शुभ हो ।।
कीर्तनानन्द में प्रभुवर, भाव-विह्वल करें सबको ।
दिव्य आनन्द का मेला, सदा शुभ हो, सदा शुभ हो ।।
नाम-गुणगान हम करते, यही सौभाग्य जीवन का ।
धन्य-कृतकृत्य हो जाना, सदा शुभ हो, सदा सुभ हो ।।

रामकृष्ण मिशन की १२५वीं वर्षगाँठ पर विशेष

रामकृष्ण मिशन का आदर्श, क्रियान्वयन और प्रभाव

स्वामी सुवीरानन्द

महासचिव, रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन

बेलूड़ मठ, हावड़ा

प्रश्न – रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, इन दोनों प्रतिष्ठानों का नाम एक साथ ही उच्चारित होता है, दोनों प्रतिष्ठानों का आदर्श सम्पूर्ण रूप से एक होने पर भी कार्य–पद्धति में क्या भेद है?

उत्तर – आदर्श के परिप्रेक्ष्य में तथा आचरणगत दृष्टि से रामकृष्ण मठ में पूजा-पाठ, उपासना की प्रधानता रहती है, दूसरी ओर रामकृष्ण मिशन में समाज-कल्याणपरक सेवा-कार्य होता है, किन्तु वर्तमान समय में मानव समाज की आवश्यकता अनुसार विशेष रूप से भारतवर्ष में रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन में पूजा-पाठ, उपासना एवं सेवा-कार्य एक साथ अनुष्ठित होता है, अत: कार्य-पद्धति की दृष्टि से कोई भेद दृष्टिगोचर नहीं होता है, क्योंकि दोनों प्रतिष्ठानों का उद्देश्य एक ही है, वह महान उद्देश्य है – 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' – स्वयं की मुक्ति एवं जगत का कल्याण करना। इस प्रसंग में रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष स्वामी शिवानन्द जी की वाणी द्रष्टव्य है। महापुरुष महाराज कहते हैं –

रामकृष्ण-धारा के वर्तमान कर्मों की भिन्नता के आधार पर ही रामकृष्ण मिशन एवं मठ बना है, जो सामान्यतया कुछ संशय को जन्म देता है, वास्तव में यह पूर्णत: तकनीकी रूप है। सामान्यत: लोगों की धारणा है कि मठ एक ऐसा स्थान है, जहाँ केवल ध्यान एवं अध्ययन किया जाता है, जबकि लोक-सेवापरक कार्य मिशन का क्षेत्र है। वास्तव में कुछ क्षेत्रों में ऐसा हुआ है, पर इस प्रकार के किसी संशय को स्पष्ट करना यहाँ आवश्यक है। स्वामीजी के विचारानुसार मठ के अन्तर्गत सब कुछ है – कर्म के साथ-साथ पूजा-आराधना, समाज सेवा साथ ही ध्यान एवं अध्ययन। वे बेलूड़ मठ को एक समपूर्ण विश्वविद्यालय बनाना चाहते थे। इसके पाठ्यक्रमों में धर्म और दर्शनशास्त्र के अध्ययन के साथ ही तकनीकी शिक्षा का भी समन्वय करना चाहते थे। इसके पश्चात् उन्होंने कहा – ''केवल वैधानिक दृष्टि से मठ एवं मिशन में बाह्य रूप से भेद किया गया है, किन्तु रामकृष्ण संघ के सभी सदस्य, उनका कर्मक्षेत्र चाहे जो भी रहा हो, वे सभी मूलत: उस रामकृष्ण संघ के अन्तर्गत ही हैं, जिसकी परिकल्पना स्वामीजी द्वारा की गयी थी। मठ और मिशन के कार्यों में किसी प्रकार का अन्तर या विभेद का

प्रयास स्पष्ट रूप से स्वामीजी के आदर्शों के विरुद्ध है एवं इसलिए स्वत: निन्दनीय है, मठ या मिशन के आर्दशों में अन्तर ढूँढ़ने या दर्शाने का प्रयास या चेष्टा करना अपवित्र एवं भयंकर है।''

१८९० ई. में श्रीमाँ बोधगया गईं। वहाँ के मठ एवं मठ के संन्यासियों का संघबद्ध जीवन तथा सम्पन्नता को देखकर उन्हें अपनी सन्तानों का स्मरण हो आया – कितना कष्ट है उनलोगों को ! आश्रयहीन हैं ! मुट्ठीभर अन्न के लिए कोई स्थान नहीं है ! कौन कहाँ है पता नहीं ! श्रीश्रीमाँ का हृदय व्यथित हो गया। ठाकुर से उन्होंने प्रार्थना की – ''ठाकुर तुम आए, इन लोगों के साथ लीला कर, आनन्द करके, चले गए और सब कुछ समाप्त हो गया, तो फिर इतने कष्ट करके आने की आवश्यकता क्या थी?... तुम्हारे नाम से सब कुछ छोड़कर मेरे बच्चे दो मुट्ठी अन्न के लिए भटकेंगे, वैसा मैं नहीं देख सकूँगी, मेरी प्रार्थना है, तुम्हारे नाम से जो भी निकलेंगे, उनको सामान्य अन्न-वस्त्र का अभाव न हो। वे लोग तुम्हें और तुम्हारे भाव और उपदेशों को लेकर एक साथ रहेंगे और इस संसार-ताप से तप्त प्राणी उनके पास आकर, तुम्हारे उपदेशों को सुनकर शान्ति प्राप्त करेंगे, इसीलिए तो तुम्हारा आना हुआ था।... तदनन्तर नरेन ने धीरे-धीरे यह सब किया।'' परवर्ती काल में योगीन माँ ने कहा था – 'जो कुछ भी देखते हो (मठ-आश्रम) सभी कुछ उनकी (श्रीमाँ की) कृपा से है।''

प्रश्न – १८९७ में रामकृष्ण मिशन की स्थापना होने के बाद १२५ वर्ष बीत चुका है। संख्या एवं कर्म-क्षेत्र की दृष्टि से स्वदेश एवं विदेशों में आज मिशन का क्या स्थान है?

उत्तर – अभी तक भारत में रामकृष्ण संघ के २१३ केन्द्र हैं, भारत के बाहर में २३ देशों में रामकृष्ण संघ की उपस्थिति विशेष रूप से द्रष्टव्य है। विदेशों में रामकृष्ण संघ की केन्द्र संख्या ९७ है। अर्थात् वर्तमान में रामकृष्ण मिशन के ३१० केन्द्र हैं। इनमें से २६५ शाखा केन्द्र हैं एवं ४५ उपकेन्द्र हैं। बांग्लादेश, अमेरिका, ब्राजील, कनाडा, रूस एवं दक्षिण अफ्रीका में रामकृष्ण संघ का एकाधिक केन्द्र है और अर्जेन्टिना, आस्ट्रेलिया, फिजी, फ्रांस, जर्मनी, आयरलैंड, जापान, मलेशिया, मॉरिशस, नेपाल, नीदरलैण्ड, न्यूजीलैण्ड, फिलीपिन्स, सिंगापुर, श्रीलंका, स्वीटजरलैण्ड, इंग्लैंड एवं जाम्बिया में एक-एक केन्द्र हैं। अन्य धार्मिक संस्थाओं की तुलना में संख्या की दृष्टि से यह बहुत नगण्य है, पर रामकृष्ण संघ के प्रभाव के विषय में समझने के लिए एक घटना का यहाँ उल्लेख करता हूँ –

स्वामी लोकेश्वरानन्द जी, पोप द्वितीय जॉन पॉल के आह्वान पर मेटिकन सिटी गए थे। उस समय मेटिकन बेतार केन्द्र से स्वामी लोकेश्वरानन्द जी के अंग्रेजी वक्तव्य का सम्प्रचार किया गया था। स्वामी लोकेश्वरानन्द जी ने सम्भवत: यह सोचा था कि द्वितीय जॉन पॉल, रामकृष्ण संघ के सम्बन्ध में कुछ जानते नहीं होंगे, इसलिए पोप से साक्षात्कार के समय उन्होंने अपना परिचय देते हुए कहा – ''मैं विश्व का क्षुद्रतम, कनिष्ठतम एवं दरिद्रतम संन्यासी-संघ का सदस्य हूँ।'' पोप ने उनको सम्मान प्रदर्शित करते हुए कहा – ''स्वामीजी, मैं आपके रामकृष्ण संघ के बारे में जानता हूँ। आध्यात्मिकता के दृष्टिकोण से यह संघ अवश्य ही विश्व का सर्वश्रेष्ठ शक्तिशाली संघ है।''

विशिष्ट अर्थशास्त्री एवं भारत के प्रधानमंत्री के पूर्वतम अर्थनैतिक उपदेष्टा एवं वर्तमान में अमेरिका के कर्नल यूनिवर्सिटी के सी. मार्क्स अध्यापक डॉ. कौशिक वसु टिप्पणी करते हुए कहते हैं – 'रामकृष्ण मिशन की मुख्य विशेषता इसकी संगठनात्मक उत्कर्षता है। आप इसे सम्पूर्ण भारत में कार्यरत मिशन के विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं अस्पतालों में देख सकते हैं। हजारों की संख्या में आगन्तुकों एवं पर्यटकों के प्रतिदिन बेलूड़ मठ आने के बाद भी सभी क्षेत्र शान्त देखा जाता है। इसके विभिन्न कार्यक्रम – विविध समाज सेवा से लेकर शास्त्रीय स्तोत्र-पाठ तक घड़ी के समान सटीक समय से चलता रहता है।...'' और हमारे लिए यह स्मरणीय है, जिसे रामकृष्ण मिशन के वर्तमान अध्यक्ष स्वामी विवेकानन्द जी की वाणी का उल्लेख करते हुए लिखते हैं – ''एक शताब्दी बीत चुका है, जब से ये शब्द उच्चारित हुए थे। २०वीं सदी के अन्त में हमें यह अनुभव हो रहा है कि – हम पीछे की ओर बर्बरता के युग में जा रहे हैं, जब बल ही मुख्य है एवं दलीय निष्ठा की ही केवल प्रधानता है।'' ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के इतिहास विभाग की प्रधान अध्यापिका हयारिस रुथ ने मुझसे कहा था – उस विश्वविद्यालय में कोई भी ऐसा नहीं है, जो स्वामी विवेकानन्द को नहीं जानता है। कोलकता के चीनी दूतावास के कॉउंसिल जनरल झा ल्यिू ने मुझे एक पत्र में लिखा था – **"I am deeply impressed with the ideology and activities started from Ramakrishna and the vision of Swami Vivekananda. They are not**

only the most celebrated thinkers and Spiritual leaders of India, but also great names to many chinese people." वास्तव में रामकृष्ण मिशन का प्रभाव देश-विदेश सर्वत्र आश्चर्य रूप से फैल चुका है।

प्रश्न – भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी रामकृष्ण मिशन का कार्य प्रसारित है। क्या मिशन के भारतीय एवं विदेशी कार्य-प्रणाली में कुछ अन्तर है?

उत्तर – रामकृष्ण मिशन के भारतीय केन्द्रों में धर्म-चर्चा एवं सेवा-कार्य एक साथ समान रूप से सम्पन्न होता है, किन्तु विदेशीगण धन-सम्पदा से अत्यन्त समृद्ध हैं, उन्हें वास्तविक धर्म एवं आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। स्वामीजी का स्वप्न था – प्राच्य से संन्यासी-प्रचारकगण धर्म एवं अध्यात्म की शिक्षा देने के लिए पाश्चात्य जाएँगे। इसलिये विदेशों में हमारे अधिकांश केन्द्र रामकृष्ण मठ की शाखा हैं। वहाँ धर्म-चर्चा, पाठ-विवेचन, ये सब दैनिक कार्य-कलाप हैं। किन्तु कुछ देशों में प्रयोजनानुसार सीमित रूप से सेवापरक कार्य भी किया जाता है।

प्रश्न – १८९३ में स्वामी विवेकानन्द ने ही प्रथम अमेरिका जाकर योग एवं वेदान्त की वाणी का सम्पूर्ण विश्व में प्रचार किया था। इसके कुछ वर्षों के पश्चात् ही रामकृष्ण मिशन की स्थापना हुई एवं वेदान्त आन्दोलन भारत और विदेशों में प्रसारित होना प्रारम्भ हो गया। अभी रामकृष्ण मिशन के अतिरिक्त अन्य धार्मिक एवं आध्यात्मिक संस्थान भी वेदान्त-प्रचार एवं मानव सेवापरक कार्यों में संलग्न हैं। इस परिप्रेक्ष्य में रामकृष्ण मिशन की भूमिका एवं विशेषता क्या है?

उत्तर – रामकृष्ण संघ की कुछ चरित्रगत विशेषतायें और विश्वास इस प्रकार हैं – १. आत्मा की अमरता २. ईश्वर से एकत्व ३. सर्वधर्म-समन्वय ४. शिवभाव से जीवसेवा ५. ईश्वर के लिए व्याकुलता ६. सत्य ही कलियुग की तपस्या है, इस पर विश्वास रखना एवं तदनुसार आचरण करना ७. धर्म के क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को ग्रहण करना। ८. विज्ञान एवं वेदान्त का समन्वय ९. केवल सहिष्णुता नहीं, ग्रहिष्णुता को स्वीकृति प्रदान करना, १०. कट्टरता का वर्जन करना। रामकृष्ण संघ का साधक, साधना एवं साध्य, वास्तव में आध्यात्मिक विषय है। रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा भौतिक और आध्यात्मिक भावादर्श के मध्य सेतु-बन्धन करता है। पश्चिम बंगाल के एक भूतपूर्व राज्यपाल ने रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम में कहा था – ''रामकृष्ण संघ के संन्यासीवृन्द जितना कम्प्यूटर चलाने में निपुण हैं, उतना ही निपुण माला-जपने में भी हैं।'' ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के विख्यात चिन्तक अध्यापक हिन्दोल सेनगुप्ता लिखते हैं – ''कैसे यह संन्यासी-संघ कुछ विवाद एवं वैश्विक सद्भावना से संजीवित और संवर्धित होते रहा, यह बहुदलीय (multi-partisan organisation) संस्था सभी राज्यों में सर्वत्र सम्मानित होती रही, चाहे किसी भी प्रकार की परिस्थिति हो, चाहे कैसी भी उनकी भौगोलिक स्थिति हो। वास्तव में यहाँ नियमानुसार कोई प्रतिबन्ध नहीं होने पर भी यहाँ के संन्यासी कभी वोट नहीं डालते एवं राजनीति पर कोई विचार नहीं व्यक्त करते हैं। विश्व की किसी सफल संस्था की तरह यह संस्था भी आगे बढ़ते हुए सेवा और जन-कल्याण के क्षेत्र में अधिक धन नियोजित करनेवाली एक ऐसी संस्था है, जो बिना किसी दुष्प्रचार के आगे बढ़ रही है। ऐसा ये लोग कैसे कर पाते हैं? मेरा विश्वास है कि ये लोग एक प्रबंधन प्रणाली के द्वारा करते हैं, जिसे मैं – 'अनासक्त स्वामित्व' (detached ownership) कहता हूँ। मेरा तर्क है कि ये संन्यासी उत्तरदायित्व एवं पूर्णत: अनासक्ति की प्रबन्धन विधि में पूर्णत: कुशल हैं।''

प्रश्न – आप प्राय: अर्द्धशताब्दी से लेकर रामकृष्ण मिशन के साथ जुड़े हुए हैं। किन-किन क्षेत्रों में इस प्रतिष्ठान ने विशेष रूप से उल्लेखनीय प्रभाव का विस्तार किया है, इसी सन्दर्भ में यह जानने की इच्छा है कि ऐसा कोई और क्षेत्र है, जिसे रामकृष्ण मिशन और अधिक प्रभावित कर सकता है?

उत्तर – स्थापना के प्रारम्भ से ही विभिन्न क्षेत्रों में जन-कल्याणकारी सेवापरक कार्यों में रामकृष्ण मिशन संलग्न है। विशेषकर शिक्षा-विस्तार में, ग्रन्थ एवं पत्रिका के प्रकाशन में, चिकित्सा क्षेत्र में, पिछड़ी जातियों और आदिवासियों के विकास एवं राहत कार्यों में रामकृष्ण मिशन का योगदान अतुलनीय है। इसके अतिरिक्त देश-विदेश के जन-मानस में आध्यात्मिक चेतना जागृत करने के लिये यह संघ सदा तत्पर है। वर्तमान समाज में विशेष रूप से आदर्श-शिक्षा के प्रचार-प्रसार का प्रयोजन है। इस क्षेत्र में आगामी दिनों में रामकृष्ण मिशन समाज में और अधिक प्रभाव-विस्तार करने में सक्षम होगा, ऐसा लगता है। पश्चिम बंगाल की माननीय मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने कोलकाता के न्यूटाऊन ईको पार्क के समीप एक उत्कृष्ट भूमि दान कर एक Institute of Human Excellence निर्माण करने का अनुरोध

हमलोगों से किया था। प्रतिष्ठान का नामकरण भी उन्होंने ही किया – 'विवेक तीर्थ'। इस प्रतिष्ठान का निर्माण-कार्य भी शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा। हमारा मानना है कि आदर्श शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार में 'विवेक तीर्थ' एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेगा।

रामकृष्ण भावान्दोलन के विषय में प्रोफेसर जॉकसन अपने शोधपरक निबन्ध में लिखते हैं – ''रामकृष्ण-भावधारा एक भिन्न प्रकार की विशेष महत्त्वपूर्ण भावधारा है। इसके बहुत से आयाम हैं, जिसे इस प्रकार कहा जा सकता है –

(१) अमेरिका के विशेष समुदायों में यह (रामकृष्ण मिशन) विश्व के महान धर्मों में से एक मुख्य धर्म का पश्चिमी प्रवक्ता है।

(२) आधुनिक हिन्दू धर्म की प्रगति विश्व के मुख्य महान धर्म इस भाव को आदान-प्रदान करने की दिशा में रामकृष्ण मिशन महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। हिन्दू धर्म प्रचारविहीन (Non missionary religion) धर्म रहा है। रामकृष्ण मिशन प्रथम हिन्दू संगठन है, जिसने पश्चिम में धार्मिक कार्य करने का प्रयास किया। ईसाई मिशनरी ने भारत में एवं प्राच्य वालों ने बहुत सारे देशों में अब सामान्य स्थान बना लिया है। प्राच्य की धर्म-प्रचारक संस्थाएँ पश्चिम के लिए नवीनतम हैं। संयुक्त राष्ट्र में हिन्दू धर्म स्थापित करने का प्रयास अन्ततः असफल रहा, क्योंकि यह विश्व के धर्मों को कुछ नया परामर्श देता है।

(३) इसका इतिहास बताता है कि प्राच्य और पाश्चात्य जब पश्चिम से मिलता है, तो क्या होता है, आज सम्पूर्ण विश्व के बुद्धिजीवी संगोष्ठी में 'रामकृष्ण मिशन' एक परिचित नाम है।

प्रश्न – संस्थागत पथ पर चलते हुए यदि किसी विषय में रामकृष्ण मिशन को सावधान होने की विशेष आवश्यकता है, तो वह क्या है?

उत्तर – वर्तमान पीढ़ी में सब कुछ बहिर्मुखी है। फेसबुक, ट्विटर आदि सोशल मीडिया के माध्यम से घर में बैठे हुए संसार मुट्ठी में आ सकता है। कई क्षेत्रों में इनसे कई समस्यायें भी आ सकती हैं। क्योंकि हम सभी साधु-संन्यासी हैं, हमें सदा इस विषय में सजग रहने की आवश्यकता है। यदि किसी प्रकार से हमारा मन बहिर्मुखी हो जाएगा, तो हमारे सेवा-कार्यों में भी विघ्न उत्पन्न होगा, जो हमारे संस्थान के लिए हानिकारक है। इसके अलावा आजकल राजनेता लोग जाति-धर्म को अस्त्र बनाकर जनता के मन को प्रभावित करने की चेष्टा करते हैं। ऐसा कोई राजनीतिक दल नहीं है, जो रामकृष्ण-विवेकानन्द की वाणी उद्धृत नहीं करता हो। यद्यपि हमलोग सम्मानित व्यक्ति के रूप में सबका सम्मान करते हैं, किन्तु साधु-सम्प्रदाय के सदस्य के रूप में हमें सावधान रहने की आवश्यकता है। किसी के मिथ्या प्रोत्साहन में आकर राजनीति के जाल में हम स्वयं को किसी प्रकार से बद्ध न करें। क्योंकि यह स्वामीजी के आदर्श के विरुद्ध होगा।

प्रश्न – रामकृष्ण संघ के विशाल कर्म-क्षेत्र में संन्यासियों एवं ब्रह्मचारियों की एक विशेष महत्त्वपूर्ण भूमिका है। रामकृष्ण मिशन की स्थापना से आज तक (प्रति २५ वर्षों का) इनकी संख्या का आँकड़ा यदि मिले, तो पाठक समझ पाएँगे कि कितने अल्पसंख्यक संन्यासी एवं ब्रह्मचारियों द्वारा ऐसा बृहत् कर्म-यज्ञ हो रहा है।

उत्तर – आँकड़ों के अनुसार रामकृष्ण संघ में –

(क) १९२७ में २५० साधु-ब्रह्मचारी थे।

(ख) १९५५ में प्रायः ५२५ साधु ब्रह्मचारी थे।

(ग) १९८० में ८०० साधु-ब्रह्मचारी थे।

(घ) २००५ में प्रायः १३०० साधु-ब्रह्मचारी थे।

(ङ) वर्तमान में लगभग १८०० साधु-ब्रह्मचारी हैं।

इन्हीं कुछ साधु-ब्रह्मचारी के द्वारा श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ और स्वामीजी इस विशाल सेवा-यज्ञ को संचालित कर रहे हैं। दिव्यत्रयी के आशीर्वाद के बिना यह सेवा यज्ञ असम्भव ही है।

समय-समय पर रामकृष्ण संघ के अध्यक्ष महाराज लोगों के पास कोई-कोई आते रहे, जिनमें राष्ट्रीय सेवा की प्रबल सम्भावना के लक्षण को देखकर, उन्हें मानव-कल्याण के लिए कर्म करने की प्रेरणा देकर अध्यक्ष महाराजगण द्वारा वापस कर दिया गया। जैसे – स्वामी ब्रह्मानन्द जी के पास आए थे नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, स्वामी अखण्डानन्द जी के पास आए थे एम.एस.गोलवलकर, स्वामी माधवानन्द जी के पास आए थे श्री नरेन्द्र मोदी आदि। इसके अलावा स्वामी विवेकानन्द के आदर्श से अनुप्रेरित होकर अपने जीवन को जन-सेवा में उत्सर्ग करनेवाले अनगिनत लोग हैं, उनमें से कुछ लोगों के नाम उल्लेखनीय हैं – धनकुबेर बिलगेट्स, विशिष्ट समाजसेवी अन्ना हजारे, विशिष्ट पर्वतारोही अरुणिमा सिन्हा, विशिष्ट अभिनेत्री सुचित्रा सेन एवं कंगना रनौत आदि। ये सभी प्रत्यक्ष रूप से संघ के सदस्य न होते हुए भी श्रीठाकुर, श्रीमाँ और स्वामीजी के कर्म-यज्ञ में परोक्ष

रूप से अंश ग्रहण द्वारा जनसेवापरक कार्यों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं एवं साथ ही स्वयं को धन्य मानते हैं।

प्रश्न – रामकृष्ण मिशन के १२५ वर्ष के साथ ही २०२२ वर्ष में स्वामीजी के भारत प्रत्यावर्तन का भी १२५ वर्ष पूर्ण हो रहा है। इस शुभ मुहूर्त को स्मरणीय बनाकर रखने के लिए रामकृष्ण मिशन क्या कदम उठा रहा है?

उत्तर – रामकृष्ण मिशन की १२५ वर्ष पूर्ति के उपलक्ष्य में हमलोगों ने सम्पूर्ण वर्षव्यापी विभिन्न कार्यक्रमों के आयोजन की परिकल्पना की है। इसका शुभारम्भ १ मई, २०२२ को हुआ। इस वर्षव्यापी कार्यक्रमों के आयोजन के अन्तर्गत १८९७ वर्ष में पाश्चात्य से पहली बार स्वामीजी के भारत प्रत्यावर्तन के १२५ वर्ष पूर्ति को भी हम मनायेंगे। स्वामीजी भारत की भूमि पर पदार्पण करने के पश्चात् दक्षिण भारत के कई स्थानों पर गये थे। उन सभी स्थानों से होते हुये अखण्ड शोभायात्रा निकालने का विचार कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कई महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जाएगा। उल्लेखनीय है कि रामकृष्ण मिशन की १२५वीं वर्षगाँठ को मनाने के लिये भारत सरकार ने स्वेच्छा से मुख्यत: प्रधानमन्त्री श्रीनरेन्द्र मोदी जी की प्रेरणा से आर्थिक अनुदान सहित अन्य विभिन्न प्रकार की सहायता प्रदान करने का आश्वासन दिया है। इसके लिये केन्द्र सरकार को हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं। यह कहने में संकोच नहीं है कि पश्चिम बंगाल की मुख्यमन्त्री ममता बनर्जी भी रामकृष्ण मिशन एवं रामकृष्ण-विवेकानन्द की अनुरागी हैं। रामकृष्ण मिशन की १२५वीं वर्षगाँठ के अवसर पर हम उत्सव आदि को महत्त्व नहीं देंगे, हम महत्त्व देंगे कल्याणपरक कार्यों पर। इस ऐतिहासिक वर्ष को जन-साधारण के विकास के लिये कार्य-योजना बनाई जायेगी।

प्रश्न – विगत दो दशकों में भारत तथा विश्व के मनोजगत में एक अकल्पनीय परिवर्तन आया है एवं भविष्य में इसमें और भी द्रुत परिवर्तन होगा, ऐसी आशा की जा सकती है। इस परिवर्तन के साथ रामकृष्ण मिशन कैसे अपनी कार्य-प्रणाली को आगे ले जाएगा?

उत्तर – श्रीरामकृष्ण देव ने हमलोगों को एकांगी होने से निषेध किया है। उनका कहना था कि 'नवाब के जमाने का सिक्का बादशाह के जमाने में नहीं चलता।' अत: समय के परिवर्तन के साथ-साथ हमारी चिन्तन-धाराओं में भी परिवर्तन आवश्यक है। स्थानीय आवश्यकताओं को समझते हुए उसी प्रकार से हमें अपनी कार्यप्रणाली में भी परिवर्तन करना पड़ेगा। जैसे शिक्षा क्षेत्रों में हमने स्मार्ट कलास, ऑनलाइन कोर्स आरम्भ किया है। स्वास्थ्य सेवाओं में टेलीमेडिसिन, आयुष, पंचकर्म आदि प्रारम्भ किया गया है। प्रकाशन क्षेत्र में डिजिटल ऑडियो-बुक, ई-बुक, एनिमेशन फिल्म आदि प्रस्तुत किया जा रहा है। परन्तु हमें इस बात का भी ध्यान रखना है कि यह एक संन्यासी-संघ है। हमलोग उस आदर्श से विच्युत नहीं होंगे। जो कार्य साधु जनोचित न हो अथवा साधु समाज के लिए शोभनीय न हो, उन सभी कार्यों में हम कदापि भाग नहीं लेगें।

प्रश्न – रामकृष्ण मिशन के सर्वव्यापी कार्यों के सर्वाध्यक्ष के रूप में भविष्य की पीढ़ी के लिए आपका क्या सन्देश होगा?

उत्तर – ऐसा मत कहो, सर्वाध्यक्ष तो श्रीठाकुर जी हैं। मैं उनका दासानुदास हूँ। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था – "Do not think I imagine it, I see it" उन्होंने कहा था जो कुछ देकर जा रहा हूँ, यह भाव भविष्य में १५०० वर्षों तक चलता रहेगा। आज की पीढ़ी दीर्घायु होते हुए भी सम्भवत: इस भाव को देखने का अवसर प्राप्त नहीं कर पाएगी, लेकिन जो लोग आध्यात्मिकता एवं सेवा के लिए अपना जीवन समर्पित करेंगे, वे इस पवित्र धाराप्रवाह के साथ स्वयं को संयुक्त कर धन्य हो सकेगें। स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने एक प्रबन्ध में लिखा था – "हम सभी प्रभु के दास हैं, प्रभु के पुत्र हैं, प्रभु के लीला-सहायक हैं, इस विश्वास को दृढ़ रखते हुए कार्य क्षेत्र में अवतरित हों।" भविष्य की पीढ़ी और अधिक प्रतिभाशाली एवं उज्ज्वल होगी, यह स्वामीजी की भविष्यवाणी है। भविष्य की पीढ़ी को एक ही परामर्श है – स्मरण रखना कि रामकृष्ण मिशन एक ब्रह्मविद्या सम्प्रदाय है।

जूलियन हक्सली ने अपने एक चिन्तनशील ग्रन्थ में लिखा है – "क्या एक ऐसी संस्था की परिकल्पना करना सम्भव है, जो उमंग पैदा करे एवं भक्ति की महिमा की घोषणा करते हुए एक नवीन सम्प्रदाय को रूप दे। परन्तु एक ओर धार्मिक स्वाभिमान का तथा दूसरी और धर्मान्तरण व सांस्कृतिकता में खो जाने की गलती न करे। जैसाकि साधारणत: इस प्रकार के अधिकांश संस्थाओं के भाग्य में होता है। कुछ सदियों के भारतीय इतिहास इसके व्यावहारिक सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं। भारत के उत्साह, उमंग का नया आन्दोलन – केवल विज्ञान एवं धर्म का नहीं, अपितु पवित्रता का, धर्मनिरपेक्षता का, पूर्व एवं पश्चिम के समन्वय

का, जिसे स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा प्रारम्भ किया गया।

ऋषि अरविन्द अपने 'कर्मयोगिन्' पत्रिका में लिखते हैं – ''विश्व में अगले ५०० वर्षों में श्रीरामकृष्ण परमहंस जैसा दूसरा कोई जन्म नहीं लेगा। उनके द्वारा प्रदत्त विचारों को सबसे पहले अपने जीवन में अनुभव करना होगा, उस आध्यात्मिक शक्ति की उपलब्धि करनी होगी। जब तक ऐसा नहीं होगा, तब तक हमें इससे अधिक पूछने का क्या अधिकार है?

...''वे हमारे भूतकाल की शक्ति का प्रमाण और हमारे भविष्य हैं। ऐसा महान आविर्भाव महान कार्य करता है। अनेक लोगों को अग्नि द्वारा परखा गया, उनमें से किसी को भी शुद्ध सोना के रूप नहीं पाया गया। किन्तु जो कुछ भी होता है, चाहे वह विजय हो या पराजय, शीघ्रतम पूर्णता हो या दीर्घतम संघर्ष, यह सत्य है कि उन्होंने जन्म लिया एवं हमारे मध्य रहे, मनुष्य की दृष्टि और स्मृति में वे जीवन्त प्रमाणस्वरूप में विद्यमान हैं –

"God has shunded for the trumpet
that never shall call retreat
He is shifting out the hearts of men.
Before his judgement seat,
Oh, be swift my soul, to answer Him,
Be jubilant, my feet
While God is marching on!"

प्रसंगत: स्वामी हिरण्मयानन्द जी की एक सुन्दर अभिव्यक्ति हम स्मरण करते हैं, उन्होंने कहा था – ''हम लोग केवल पूर्ण गगन में उषा की अरुणिमा देख पा रहे हैं। जब इस संघ के माध्यम से श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ एवं स्वामीजी की संघ-शक्ति गगन की सौर-रश्मि की दीप्ति की भाँति समग्र जगत को आप्लावित करेगी। उस समय की स्थिति की कल्पना द्वारा अनुभव करते हुए हम स्वयं को धन्य समझते हैं। श्रीरामकृष्ण की जय, श्रीमाँ सारदामणि की जय, स्वामी विवेकानन्द की जय ! भारतवर्ष का द्वितीय धर्मसंघ जो सर्वांगीण एवं केन्द्रीभूत है, उस संघ का शरण ग्रहण करते हैं।'' श्रीरामकृष्ण-श्रीमाँ-स्वामीजी के आदर्शों पर अग्रसर होने से कभी भी गलत कदम नहीं पड़ सकते। उनके जीवन एवं वाणी को स्मरण रखते हुए समाज-कल्याण के लिए हम क्षमतानुसार अत्यल्प मात्रा में होने पर भी योगदान कर सकते हैं। यही वर्तमान एवं भविष्य की पीढ़ी को मेरी हार्दिक वाणी है। अन्त में बेलूड़ मठ-प्रांगण में आयोजित प्रथम महासम्मेलन के उपलक्ष्य में स्वागत-समिति के सभापति स्वामी सारदानन्द जी द्वारा प्रदत्त अंग्रेजी भाषण का अनुवाद का एकांश, अत्यन्त श्रद्धा एवं प्रेमसहित स्मरण करना चाहता हूँ। स्वामी सारदानन्द जी महाराज ने उदात्त आह्वान करते हुए कहा था – ''जो भी अपने विशेष-विशेष क्षेत्रों में इस कार्यप्रणाली का प्रयोग करने जा रहे हैं, उनकी निष्कपटता एवं लक्ष्य की एकनिष्ठता के ऊपर ही इस प्रणाली के प्रयोग की सफलता सम्पूर्ण रूप से निर्भर करती है। अत: तुम लोग स्वेच्छा से जिस कार्य में प्रयत्नशील हुए हो, वह श्रीप्रभु की कृपा से जितने दिनों तक समाप्त नहीं होता, उतने दिनों तक प्राणपण से परिश्रम करते रहो। हमारे नायक आचार्य स्वामी विवेकानन्द के प्रिय वाक्य 'उठो जागो, जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाय, तब तक रुको मत।' इस वाणी को कहते हुए मैं तुममें से प्रत्येक को उसमें योगदान करने के लिए आह्वान करता हूँ।'' हमें याद रखना होगा कि 'इस बार केन्द्र भारतवर्ष है'। यह भी सही है कि – India can only rise by sitting at the feet of Shri Ramakrishna" – ''भारत केवल श्रीरामकृष्ण के चरणों में बैठकर ही उत्थान कर सकता है। रामकृष्ण की वेदी के नीचे हम सभी एक मन से मिले हुये हैं।''

श्रीरामकृष्ण के आगमन का तात्पर्य समझना हमलोगों के लिए कठिन है। इसका कुछ अनुमान पाने हेतु विश्वकवि रविन्द्रनाथ ठाकुर की एक कविता के साथ समाप्त करता हूँ – ''**वे महामानव आए हैं।**

दिग्-दिगन्तर स्पन्दित, धरती के धूल के तृण तृण में।
सुरलोक में ध्वनित हो उठा शंख,
नरलोक में बजा जयडंक – आ गया महाजन्म का लग्न।
आज अमावस्या की रात्रि के जितने भी दुर्ग-द्वार हैं,
टूटकर धूल में लीन हो गये।
उदय शिखर से माभैः माभैः की ध्वनि आये
नवजीवन के आश्वासन से।
'जय जय जय हो मानव अभ्युदय'
गम्भीर ध्वनि गूँज उठी महाकाश में।।'' ○○○

(स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के महासचिव हैं। 'उद्बोधन' पत्रिका के कुछ प्रश्नों का उत्तर महाराज जी ने संघ में दीर्घ व्यतीत किये गये अपने अनुभव से दिया है। विवेक ज्योति के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद बैंगलुरु की रीता घोष ने किया है। – सं.)

रामकृष्ण मिशन की १२५वीं वर्षगाँठ पर विशेष

बच्चों के राखालराज

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

हम सभी जानते हैं स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज रामकृष्ण मठ और मिशन के प्रथम अध्यक्ष थे। एक बार दक्षिणेश्वर में माँ जगदम्बा ने श्रीरामकृष्ण देव को दर्शन देकर एक शिशु को लाकर उनकी गोद में रखते हुए कहा, यह तुम्हारा मानसपुत्र है। कृष्ण के सखा थे राखाल। उनका जन्म का नाम भी राखाल ही था। राखाल का मतलब होता है 'गोप बालक'। ठाकुर भी उनको राखाल की तरह ही देखते थे।

जैसा उनका नाम राखाल था उनका स्वाभाव भी वैसा ही था। महाराज शिशु के साथ शिशु की तरह व्यवहार करते। वे एक साधु की विशालता और एक शिशु (बालक) की सरलता के बीच अन्तर को आसानी से एकरूप कर दोनों में साम्यता बना देते थे। कभी किसी समय बच्चों में ऐसे एक-दो बच्चे बहुत दुष्ट होते हैं, जो आँखों से हँसते हैं, महाराज में भी यही गुण था। महाराज बच्चों के साथ बच्चा बनकर खेलते थे। एक रोचक घटना हैं – जब वे बच्चों के साथ लुकाछिपी का खेल खेल रहे थे, अचानक महाराज एक कमरे में घुसकर दरवाजा बन्द कर लेते हैं और जल्दी से एक विकट आकृति वाला मुखौटा और काले कम्बल से अपने को ढँक कर अचानक दरवाजा खोल कर जोर से 'हुम' की आवाज करते हुए बच्चों को डरा देते हैं। उनकी भयंकर काली मूर्ति देखकर बच्चों का दल भय से चिल्ला उठा। जब वे उस विकट आवरण को फेंककर अपना मुँह दिखलाते हैं, तब सभी बच्चे जोर से हँसने लगते है।

महाराज की शिशु सुलभ सरलता और मनोहर स्मृति का चयन किया है स्वामी निर्वाणानन्द जी ने। बेलूड़ मठ में निवास करते समय महाराज ने एक दिन सेवक से कहा कि उन्हें थोड़ी बदहजमी हो गई है, अत: रात को कुछ नहीं खायेंगे। महाराज के बाजू वाले कमरे में एक पात्र में कुछ मिठाई रखी हुई थी। भोर में भूख लगने पर उन्होंने स्वयं उस मिठाई को खा लिया। प्रात:काल स्वामी प्रेमानन्दजी ने उन्हें प्रणाम कर उनसे कुशल प्रश्न पूछा। उन्होंने छोटे बच्चे के समान शिकायत के स्वर में कहा, 'अरे ! मैं भूखा हूँ। इन लोगों ने मुझे अब तक कुछ खाने को नहीं दिया।'' प्रेमानन्दजी के आदेश पर सेवक बगल के कमरे में जाकर देखता है कि मिठाई का बर्तन तो खाली है। वे आश्चर्यचकित रह गये। प्रेमानन्दजी ने पूछा – बर्तन का ढक्कन खुला तो नहीं था, कहीं बिल्ली तो नहीं खा गई? महाराज अचानक हँसते हुए बोले, ''हाँ, एक बहुत बड़ी बिल्ली आई थी। वह इतनी बड़ी थी कि उसने पात्र खोल लिया और मिठाई खाकर पुन: बन्द करके रख दिया।'' बड़ी बिल्ली कहते समय उन्होंने अपनी ओर संकेत किया, इस घटना को सुनकर सभी हँसने लगे।

पतंग उड़ाना राखालराज को बहुत पसन्द था। कभी-कभी पतंग लेकर वे बालक की तरह मतवाले हो जाते। प्रत्यक्षदर्शी स्वामी काशीश्वरानन्द ने अपने संस्मरण में लिखा है, ''एक दिन महाविद्यालय से लौटते समय इन्दिर (स्वामी देवात्मानन्द) और मैं बलराम मन्दिर गये। महाराज को खोजते-खोजते हमने देखा कि वे एक मकान की छत पर पतंग उड़ा रहे हैं। उनकी सहायता में ३ सेवक भी लगे हैं। मुझे देखकर महाराज ने पूछा, 'तू पतंग उड़ा सकता है? पतंग को लड़ा सकता है?' मैंने कहा, 'हाँ कर सकता हूँ, महाराज।' उन्होंने कहा, 'मुझे लखनऊ से पतंग मँगवा देगा?' मैंने कहा, ''हाँ महाराज, वहाँ मेरे परिचित लोग है, मँगवा दूँगा।'' इन पतंगों की लड़ाइयों की व्यवस्था बलरामबाबू के भतीजे निताई बाबू (नित्यानन्द) किया करते थे। लखनऊ से पतंग मँगवाकर महाराज के हाथों में नहीं दी जा सकी, क्योंकि इसके पहले ही वे महासमाधि में लीन हो गये थे। इसके साथ ही मेरा पतंग उड़ाने का नशा भी खत्म हो गया। कुछ ऐसा स्वभाव था बच्चों के साथ राखालराज या राजा महाराज या स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज का। ○○○

प्रश्नोपनिषद् (३५)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

सुषुप्ति अवस्था

स यदा तेजसाभिभूतो भवत्यत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथ तदैतस्मिञ्शरीरे एतत्सुखं भवति।।४/६।।

अन्वयार्थ – स: (वह जीवात्मा) यदा (जब) तेजसा (तेज के द्वारा) अभिभूत (वशीभूत हो जाता है), अत्र (उस अवस्था में) एष: देव: (यह मनरूपी देव) स्वप्नान् (सपनों को) न पश्यति (नहीं देखता)। अथ (इसके बाद) तदा (तब) एतस्मिन् (उसी) शरीरे (शरीर में) एतत् (इस) सुखम् (सुषुप्ति-सुख का) भवति (अनुभव करता है)।

भावार्थ – वह जीवात्मा जब तेज के द्वारा वशीभूत हो जाता है, तो उस अवस्था में यह मनरूपी देव सपनों को नहीं देखता। इसके बाद, वह उसी शरीर में इस सुषुप्ति-सुख का अनुभव करता है।

भाष्य – स यदा मनोरूपो देवो यस्मिन् काले सौरेण पित्त-आख्येन तेजसा नाडी-शयेन सर्वतो अभिभूतो भवति तिरस्कृत-वासना-द्वारो भवति, तदा सह करणैः मनसो रश्मयो हृदि उपसंहृता भवन्ति।

भाष्यार्थ – जिस समय, मनरूपी देवता नाड़ियों में स्थित तेज के द्वारा, पित्त नामक सूर्य-रश्मियों के द्वारा, पूर्ण रूप से अभिभूत (वशीभूत) हो जाता है, तब उसके संस्कारों के द्वार बन्द हो जाते हैं और तब मन की रश्मियाँ इन्द्रियों के साथ हृदय में एकत्र हो जाती हैं।

भाष्य – यदा मनो दारु-अग्निवत्-अविशेष-विज्ञान-रूपेण कृत्स्नं शरीरं व्याप्य-अवतिष्ठते, तदा सुषुप्तो भवति। अत्र एतस्मिन् काले एष मन-आख्यो देवः स्वप्नान् न पश्यति दर्शन-द्वारस्य निरुद्धत्वात् तेजसा।

जिस समय मन काष्ठ या लकड़ी में निहित अग्नि के समान सामान्य चेतना के रूप में पूरे शरीर में व्याप्त होकर स्थित हो जाता है; उस समय तेज के द्वारा दर्शन के द्वार बन्द कर दिये जाने के कारण, यह मन नामक देवता सपनों को नहीं देखता।

भाष्य – अथ तद्-एतस्मिन् शरीरे एतत् सुखं भवति यद्-विज्ञानं निराबाधम् अविशेषेण शरीर-व्यापकं प्रसन्नं भवति इत्यर्थः।।६।।

भाष्यार्थ – उस समय इस शरीर में यह सुख प्रकट होता है, जो अबाध चैतन्य का स्वरूप है; अर्थात् तब आनन्द सामान्य रूप से पूरे शरीर में व्याप्त हो जाता है और अबाध बना रहता है ।।४/६।।

भाष्य – एतस्मिन् काले अविद्या-काम-कर्म-निबन्धनानि कार्य-करणानि शान्तानि भवन्ति। तेषु शान्तेषु आत्म-स्वरूपम् उपाधिभिः अन्यथा विभाव्यमानम् अद्वयम् एकं शिवं शान्तं भवति इति एताम् एव अवस्थां पृथिवी-आदि-अविद्याकृत-मात्रा-अनुप्रवेशेन दर्शयितुं दृष्टान्तम् आह –

इस (निद्रा के) समय अविद्या-काम-कर्म (के क्रम पर आधारित) शरीर तथा इन्द्रियाँ निष्क्रिय रहती हैं। उनके शान्त हो जाने के बाद, आत्मा का स्वरूप, जो उपाधियों की विद्यमानता से विकृत प्रतीत होता था, अब अद्वय, शिव तथा शान्त हो जाता है। पृथ्वी आदि के उसके सूक्ष्म रूपों में (क्रमश:) विलय की प्रक्रिया के द्वारा अविद्या द्वारा उत्पन्न इसी अवस्था को समझाने के लिए एक दृष्टान्त बताया जा रहा है – **(क्रमशः)**

किसी से घृणा न करें

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

यदि आप आध्यात्मिक जीवन बिताना चाहते हैं, तो कभी भी कोई असत् कार्य न करें। किसी से घृणा न करें। किसी का बुरा न सोचें। भगवान का सच्चा भक्त कभी किसी का बुरा नहीं सोचता। भगवान का सच्चा भक्त उदासीन हो जाता है। वह किसी से शत्रुता नहीं करता। ये सच्चे भक्त के लक्षण हैं। जिनका मन स्वस्थ है, वे सर्वदा आनन्द में रहते हैं। हमें अपने २४ घंटे के जीवन में थोड़ा समय भगवान के लिए निकालना चाहिये। सुबह नींद खुलते ही भगवान का दर्शन और नाम-स्मरण करना चाहिये। पूरे दिन सत् चिन्तन में लगे रहें, इसके लिए भगवान से प्रार्थना करनी चाहिये। भगवान के नाम और दर्शन करके ही दिन का प्रारम्भ करें। सोने के पहले भी भगवान से प्रार्थना करें। भगवान का नाम लेने के लिए कोई नियम नहीं है। भगवान का नाम हर अवस्था में लिया जा सकता है। दिन के सभी कार्यों को ठाकुरजी को अर्पित करें। हमें ऐसा नियम बना लेना चाहिए। सब कुछ भगवान का ही है। उनको ही सब समर्पित करें। प्रत्येक कर्म समर्पण के भाव से करें। नियम बना लेने से आदत पड़ जायेगी। उसके बिना हम नहीं रह सकेंगे। आदत पड़ने से नियमितता आयेगी। जीवन में कर्म बदलने की आवश्यकता नहीं। भगवान तो भावग्राही जर्नादन हैं। सब समझते हैं।

जब आप मिलकर चर्चा करते हैं, तो परमार्थ की चर्चा कीजिये, भगवान की चर्चा कीजिये। खाली समय में नाम-जप का अभ्यास कीजिये। इससे मन शान्त होता है। सदा मृत्यु का स्मरण रखो, तब भगवान याद आते रहेंगे।

जीवन में जो भी अच्छा-बुरा किया है, उसे शरणागत होकर भगवान को समर्पित कर दो। भगवान तुम्हारी रक्षा करेंगे। मन में ऐसा भाव रखो कि सब कुछ समर्पणभाव से प्रभुप्रीत्यर्थ कर रहे हो। जीवन में जो कुछ होगा, वह भगवान की इच्छा से होगा। ऐसा सोचने से हम, जो भी हो रहा है, उसे प्रभु की इच्छा मानकर स्वीकार करेंगे। हमें ऐसा लगेगा कि सदा ईश्वर हमारे साथ हैं।

हम सब काम प्रभुप्रीत्यर्थ ही कर रहे हैं, ऐसा सोचना चाहिए। संसार के हर कार्य के पीछे ईश्वर का अस्तित्व है। हमें ईश्वर सान्निध्य का सतत अभ्यास करना चाहिए। ईश्वर की अनुभूति इस मानव देह में होती है। प्रभु तो सर्वदा हैं, उनकी उपस्थिति का अनुभव करना चाहिए। जो लोग नास्तिक हैं, उनके प्रति घृणा नहीं करनी चाहिये। घृणा नहीं करने से हमारा मन विचलित नहीं होगा। हम किसी से घृणा कर रहे हैं, यह भी भगवान देख रहे हैं। उससे हमारे अशुभ कर्म बन जाते हैं। इसलिये किसी से घृणा-द्वेष न करें।

जपात् सिद्धिः। जप से सिद्धि मिलती है। सिद्ध होना अर्थात् इन्द्रियों का स्वामी होना। जप करने से हमारे विचार शुद्ध हो जाते हैं। हम सभी विकारों से बच जाते हैं। हमारे मन में एकाग्रता आती है। एकाग्र होकर ईश चिन्तन करने से ईश्वर-लाभ होता है। जप से हमारा मन ईश्वराभिमुख हो जाता है। जप से चित्त शुद्ध होता है। चित्त शुद्ध होने से भगवान का अनुभव होने लगेगा। जपात् सिद्धिः का यह भी अर्थ है कि जप करते-करते हमारे मन का कलुष चला जाता है। जप करते-करते हमारे मन को अपवित्रता छू नहीं सकेगी। मन में सद्बुद्धि आयेगी। हमारे गुरु ने हमें सिद्ध मंत्र दिया है और भगवान को प्राप्त करने की कुंजी दी है। गुरु ने अपने आपको भी हमें दिया है। यही उनके अमूल्य रत्नों को पाना है। गुरुमंत्र में ये महान शक्ति है कि उससे विवेक जग जाता है और मानव इसी जीवन में नित्यानन्द में डूब जाता है। यदि गुरु के दिए हुए अमूल्य रत्नों को खो बैठे, तो उनकी अवहेलना होगी। जप सतत करते रहना है। यदि उसमें बाधा आयी, तो समझना कि यह अपने कर्मों का फल है। बाधा तो आयेगी, किन्तु उसकी ओर ध्यान नहीं देना है। सतत जप का प्रयत्न करते रहना है। ○○○

इच्छा-शक्ति को कैसे बढ़ायें

स्वामी गुणदानन्द

रामकृष्ण मठ, नागपुर

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार, 'इच्छा – आत्मा और मन का एक मिश्रण है।'

इच्छा शक्ति का प्रादुर्भाव कैसे होता है?

वेद के अनुसार, वस्तुत: इस सृष्टि के आदि में अन्तरिक्ष, पृथ्वी और वायुमण्डल भी अस्तित्व में नहीं थे अथवा कुछ भी नहीं था। उस असत् ने एक इच्छा की – 'मैं होऊँ'। इससे एक अर्थ निकल आता है कि विश्व के समस्त रचनात्मक क्रियाओं के पीछे इच्छा-शक्ति ही कार्य कर रही है।

इच्छा-शक्ति क्या है?

इच्छा-शक्ति मन की वह क्रिया है, जो हमें अनुकूल, ज्ञात, अभीष्ट तथा सकारात्मक और रचनात्मक कार्यों को करने के लिए प्रेरित करती है तथा सक्षम बनाती है, साथ में प्रतिकूल, अज्ञात, अनिष्टकारी और अनुचित कार्य करने से हमें बचाती है। हर कोई नियमित रूप से दृढ़तापूर्वक प्रयास करने से इच्छा-शक्ति में वृद्धि कर सकता है, यह आवश्यक नहीं है कि हमारी पहले की असफलताएँ हमारी भविष्य की असफलताओं को इंगित करती हों।

मूलभूत समस्या

पाण्डव गीता में कहा गया है – मैं जानता हूँ कि धर्म क्या है, उचित क्या है, अच्छा क्या है, परन्तु उसे करने में मेरी प्रवृत्ति नहीं होती और मैं यह भी जानता हूँ कि क्या अनुचित है, अधर्म है, बुरा है, पाप है, परन्तु मैं उसे बिना किये रह नहीं पाता।

आत्म-अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि दैनिक जीवन में मूलभूत समस्या ही अधिकांश संकटों का कारण होती है। जीवन की मूलभूत समस्या है – जो कार्य उचित और सार्थक हैं, उनको सम्पन्न करने में अक्षम होना और अनुचित और निरर्थक कार्यों से दूर रहने की अपेक्षा उनकी ओर आकृष्ट होना।

इच्छा-शक्ति का विकास

श्रेयस्कर और उच्चतर जीवन के विकास के लिए युवा

अवस्था सर्वोत्तम अवस्था है। युवा अवस्था में ही दृढ़तापूर्वक प्रयास करने से हम अपनी इच्छा-शक्ति में वृद्धि कर सकते हैं। यदि हम गाँधीजी की इच्छा-शक्ति के प्रभाव का विश्लेषण करें, जिन्हें चर्चिल ने 'अधनंगा फकीर' कहा था, तो यह ज्ञात होता है कि यह उनकी इच्छा-शक्ति ही थी, जिसने साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा शासित समस्त देशवासियों को प्रभावित किया था।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, 'उठो, साहसी बनो, वीर्यवान होओ ! याद रखो कि तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो। तुम जो कुछ बल या सहायता चाहो, सब तुम्हारे भीतर ही विद्यमान है।''

दृढ़ इच्छा

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है – ''मनुष्य की यह इच्छा-शक्ति चरित्र से उत्पन्न होती है और वह कर्मों से गठित होता है। अतएव, जैसा कर्म होता है, इच्छा-शक्ति की अभिव्यक्ति भी वैसी ही होती है।'' इच्छा-शक्ति प्रकृति की महान् शक्तियों को भी पराभूत कर देती है। उदाहरणार्थ, कोलम्बस के समय में अमेरिका की स्थिति की वर्तमान अमेरिका के साथ तुलना करने पर विदित होता है कि यह अतिशय और अद्भुत परिवर्तन मानव की इच्छा-शक्ति के कारण ही सम्भव हो सका है। जगत् के समस्त क्रिया-कलाप, गतिविधियाँ और विज्ञान के क्षेत्र में आश्चर्यजनक विकास हमें अचम्भित कर देते हैं – ये सब मानवीय इच्छा के ही प्रस्फुटन हैं।

वीरता और साहस

दिव्यत्व को जगाने के लिए हमें वीरता और साहस का अनुसरण करना होगा। हमारा घोषवाक्य हो : सत्य के साथ जाऊँगा, चाहे वह जहाँ भी ले जाये। इस प्रकार की विचारशील जीवन-प्रणाली में बाधाओं का सामना करते हुए उचित दृष्टिकोण से, बिना किसी डर के, बाधाओं को स्वीकार करना होगा। यदि हम अमेरिकी गृहयुद्ध (१८६१-६५) के अन्धकारमय काल का स्मरण करें, जब ह्वाइट हाउस के अन्दर अलग-थलग पड़ने पर, अब्राहन लिंकन ने राष्ट्र को बचाने में दृढ़ इच्छा-शक्ति का परिचय दिया। उनकी इच्छा-शक्ति के बिना अमेरिका की क्या स्थिति होती?

सकारात्मक जीवन

जब हम सकारात्मक जीवन जीते हैं, हममें निष्ठा उत्पन्न होती है, जो हमें ऊर्जावान बनाकर इच्छा-शक्ति के विकास में सहयोग करती है। इच्छा-शक्ति के विकास के लिए एकनिष्ठ होना आवश्यक है। अन्तर्मन से यह जाने लें कि हम ठीक मार्ग पर हैं, संशयात्मक बुद्धि का त्याग कर दें। अपनी आत्मा में विश्वास करें और हम पायेंगे कि हमारे भीतर इच्छा-शक्ति की वृद्धि हो रही है। जीवन में एक कार्य भी उचित ढंग से किया जाये, तो इससे अन्य कार्यों को करने में भी सहायता प्राप्त होती है।

नैतिक जीवन का निर्वहण करना आनन्ददायी है, फिर भी हम अनैतिक कार्य कर डालते हैं। नैतिकता के अनुसार चलना ही श्रेयस्कर है। यदि नैतिकता का पालन न करें, तो उसका दु:खद परिणाम हमें भोगना ही पड़ता है। प्रात:काल में उठना उत्तम है, किन्तु घड़ी का अलार्म बजता है, तो हम उसे तुरन्त बन्द करते हैं, एक घण्टा और सो लेते हैं, परन्तु इस कारण दिन भर की समय-सारणी गड़बड़ा जाती है और हम चिन्तित होते हैं। हम तनाव ग्रस्त हो जाते हैं, जिससे एक छोटी-सी घटना भी हमें क्रोधित कर सकती है।

एकाग्रता

इच्छा-शक्ति के विकास में एकाग्रता का होना अत्यन्त आवश्यक है। ये दोनों एक दूसरे के परिपूरक हैं। एकाग्रता इच्छा-शक्ति को बढ़ाने में सहायक होती है और इच्छा-शक्ति एकाग्रता में वृद्धि करती है। एकाग्रता को बढ़ाने के लिए हमें अपना पूरा मन कार्य में नियुक्त कर देना चाहिए। इसके लिए मानसिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अत: इच्छा-शक्ति का विकास करने के लिए हमें अपनी मानसिक ऊर्जा व्यर्थ में व्यय नहीं करनी चाहिए। कामुक सोच, व्यर्थ की गप्पें, उद्देश्यहीन कार्य, थोथी बातें, परनिन्दा, असम्भव कल्पनाएँ, दोषदर्शी और उन चीजों के बारे में व्यर्थ में सोचना जिनके साथ हमारा दूर-दूर तक कोई सम्बन्ध नहीं है, इन सब कारणों से हमारी मानसिक ऊर्जा व्यर्थ में व्यय हो जाती है।

मानसिक ऊर्जा का संचयन

मानसिक ऊर्जा का संचयन शारीरिक ऊर्जा विशेषत: यौन ऊर्जा के रक्षण पर निर्भर करता है। इच्छा-शक्ति के विकास का मूल रहस्य ब्रह्मचर्य के उचित पालन करने में निहित है। जो लोग विवेकहीन होकर अपनी शारीरिक ऊर्जा का नाश करते हैं, उनमें इच्छा-शक्ति का अभाव होता है। इसी कारण भारत की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली में, विद्यार्थी जीवन में (ब्रह्मचर्य-आश्रम) ब्रह्मचर्य पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता था। अत: पवित्रता और नैतिकतापूर्वक जीवन यापन करते हुए इच्छा-शक्ति के विकास के लिए हमें अपनी शारीरिक ऊर्जा का संचयन करना होगा।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार : 'शिक्षा किसे कहते हैं? क्या यह पठन-मात्र है? नहीं। क्या यह नाना प्रकार का ज्ञानार्जन है? नहीं, यह भी नहीं। जिस संयम के द्वारा इच्छा-शक्ति का प्रवाह और विकास वश में लाया जाता है और वह फलदायक होता है, वह शिक्षा कहलाती है। अब सोचो कि शिक्षा क्या वह है, जिसने निरन्तर इच्छा-शक्ति को बलपूर्वक पीढ़ी दर पीढ़ी रोककर प्राय: नष्ट कर दिया है, जिसके प्रभाव से नये विचारों की तो बात ही जाने दो, पुराने विचार भी एक-एक करके लोप होते चले जा रहे हैं; क्या वह शिक्षा है, जो मनुष्य को धीरे-धीरे यंत्र बना रही है?'

जीवन के प्रारम्भकाल ही में या युवा अवस्था में हमें इच्छा-शक्ति का विकास करना सीख लेना चाहिए, क्योंकि इच्छा-शक्ति के अभाव में आत्मविकास असम्भव है। इच्छा-शक्ति से हम दुरवस्था में भी अपने जीवन में परिवर्तन ला सकते हैं। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (८८)

स्वामी भूतेशानन्द

– क्या यह अवश्य होगा?

महाराज – अवश्य होगा अर्थात् एक प्रकार से अवश्य ही कहा जा सकता है। देखो, ईसाइयों का प्रारम्भ में जो सम्मान था, अभी तो बहुत कम हो गया है। कैथोलिकों का जीवन देखो। उसके बाद बीच-बीच में एक-एक धर्मनेता ने आकर धर्म को पुन: पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है। जैसे सेन्ट फ्रांसीस और असीसी। उनको पहले ईसाई संघ ने स्वीकार नहीं किया, किन्तु उसके बाद उन्हें सेन्ट बनाया है। ऐसा परिवर्तन तो होगा ही। इस सम्बन्ध में स्वामीजी की एक भविष्यवाणी है – पाँच प्रजन्म (पीढ़ी) तक क्रमश: क्षय होता रहेगा। उसके बाद उसका ऐसा उत्थान होगा कि अतीत के गौरव का अतिक्रमण कर देगा।

– एक संघ की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में एक सौ वर्ष का समय क्या बहुत अधिक होता है? आपको क्या लगता है? क्या एक सौ वर्ष का यह परिवर्तन का समय है? या इसे परिवर्तित अवस्था कही जायेगी?

महाराज – यह क्रमश: हो रहा है। परिवर्तित अर्थात् जिसके बाद अब परिवर्तन नहीं है। यहाँ ऐसा तो नहीं है। एक संघ, उसका क्रमश: विस्तार है, उसकी कार्यशक्ति है।

– वह है, मैं कह रहा हूँ, हम लोगों का तो एक लक्ष्य है, क्या हमलोग वहाँ तक थोड़ा-सा भी पहुँच सके हैं?

महाराज – लक्ष्य हमलोगों के समक्ष है, उस लक्ष्य को जीवन में साकार करना, एक परीक्षा है।

– उसे हमलोग कितना प्राप्त कर सके हैं, आपको कैसा लगता है?

महाराज – उसे कह नहीं सकता।

– हमलोग अपने लक्ष्यपूर्ति की बात कह रहे हैं कि स्वामीजी के भाव को कितना पूर्ण कर सके हैं।

महाराज – यही तो कह रहा हूँ, लक्ष्यपूर्ति की दृष्टि से, आध्यात्मिक दृष्टि से संघ की सर्वांगीण उन्नति को समझना बहुत सरल नहीं है। परन्तु व्यक्तिगत जीवन में अवनति हो सकती है और उसे थोड़ा ध्यान देने पर ही समझा जा सकता है।

प्रश्न – महाराज ! संघ का विभिन्न प्रकार का कार्य करना साधुओं के लिये सदा सम्भव नहीं होता है, बाहरी लोगों की सहायता लेनी ही पड़ती है। किन्तु उन लोगों से कार्य कराते-कराते हमलोगों में एक Superiority complex निर्माण हो जाता है, अपना अहंकार, कर्तापन भाव प्रगट होता है, क्या ऐसे में कर्मयोग करना सम्भव है?

महाराज – अवश्य सम्भव नहीं है। किसने कहा सम्भव है। इस सम्बन्ध में मैंने स्वामी माधवानन्द जी के साथ तर्क किया था। उन्होंने कहा – एक वेतनभोगी से जो कार्य कराया जाये, उसे हमारे किसी साधु या ब्रह्मचारी से कराने से हमारे एक व्यक्ति की शक्ति का दुरुपयोग करना हुआ। किन्तु हमलोगों का कार्य-क्षेत्र अभी इतना विस्तृत है कि हमलोगों से सभी कार्य स्वयं करना सम्भव नहीं है। पहले जब हमलोग स्वयं कार्य करते थे, तब पूज्य बाबूराम महाराज कहते थे – **'जो आश्रम में वेतनभोगी कर्मचारी कार्य कर रहे हैं, ऐसा सोचना कि वे लोग तुम्हारी सहायता करने के लिए कार्य कर रहे हैं। कभी उन्हें छोटा नहीं समझना। सोचना कि वे लोग तुम्हारे कार्य में सहायक हैं।**'' हमलोग भी उस समय यथाशक्ति इसी भाव को बनाये रखने का प्रयास करते थे। आश्रम में बाहरी जो लोग कार्य करते थे, उनलोगों से हमलोग अपमान-भाव से बातें नहीं करते थे। उन लोगों के भोजन की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। ठाकुर की प्रसादी फल-मिठाई सेवकों और ब्राह्मणों के लिए रखकर ही भण्डार में बाँटी जाती थी। ऐसा सोचा जाता था कि वे सब गरीब घर से आये हैं, उन सबको पहले देखना होगा। हमलोग सभी बड़े घर से आये थे, ऐसी बात नहीं थी, मध्यमवित्त परिवारों से हमलोग आये थे, कहा जा सकता है, तब यह दृष्टि थी। मैं अभी की बात नहीं जानता, किन्तु अभी भी वही दृष्टि होनी चाहिए।

पाश्चात्य में कर्मचारियों को नौकर नहीं कहते हैं, सहायक कहते हैं। नौकर कहने से उनका अपमान होता है। कार्य के बाहर वे लोग इस भेद को नहीं रखते। कार्य करने के बाद

एक साथ बैठकर भोजन करते हैं। हमारे देश ने इस श्रमिक के गौरव को खो दिया है। यहाँ यह सम्बन्ध स्वामी-सेवक सम्बन्ध हो गया है। उनके देश में वैसा नहीं है। तुम जिसे नहीं कर सकते, उसे मैं कर रहा हूँ। तुम्हारी सहायता कर रहा हूँ। तुम्हारे कार्य का आंशिक भार मैं वहन कर रहा हूँ। उनके देश में जो लड़कियाँ वेट्रेस का कार्य करती हैं, कार्य के बाद वस्त्र बदल कर वे सब एक साथ व्यवस्थापक के साथ भोजन करने बैठती हैं। वहाँ सभी समान हैं, वहाँ कोई ऊँच-नीच का भेद नहीं है। किन्तु हमारे देश में जो लोग प्रशासक हैं, क्या उनके सामने, ऐसा किसी के सामने, कुर्सी पर कोई कर्मचारी बैठ सकता है? नहीं, नहीं बैठ सकता। यह मनोभाव हमारे देश में अंग्रेजों से आया है। हमारे देश में अंग्रेज जब प्रथम बार आये, तो उनको पहले ही सिखा दिया गया था कि वहाँ के देशवासियों से अधिक मिलना मत। तुमलोग अपने आसपास उन्हें आने मत देना। ऐसा करने से तुम लोग शासन नहीं कर सकोगे। इसलिए वे सब कर्मचारियों से दास के समान व्यवहार करके उन्हें दूर ही रखते थे। हमलोग यही अवगुण पाये हैं। किन्तु हमारे बचपन में ऐसा नहीं था। हमारे पूर्वाश्रम के घर में जो कार्य करता था, माँ उससे पुत्र के समान व्यवहार करती थी। हमलोग जो खाते थे, उसे भी वही दिया जाता था। वह हमारे बड़े भाई जैसे थे। वह सम्बन्ध इस अंग्रेजी प्रभाव के कारण नष्ट हो गया है। इस वातावरण को पुन: वापस लाने के लिए हमलोगों को प्रयास करना होगा। अभी इतना ही कहूँगा कि यह स्वामी-सेवक का सम्बन्ध अच्छा नहीं है। सभी कार्य कोई भी अकेले नहीं कर सकता। इसलिए पाँच लोगों की सहायता लेनी ही पड़ती है। हमलोगों के समय राहत-कार्य था। यहाँ तक कि कुली का कार्य भी हमलोग किये हैं। किन्तु उस समय कार्य-क्षेत्र सीमित था। सर्वाधिक सम्भवत: पाँच मील के भीतर राहत-कार्य होता था। किन्तु अभी कार्य-क्षेत्र इतना विशाल है कि हमलोग अकेले यह कार्य नहीं कर सकेंगे। अत: अन्य पाँच लोगों की सहायता लेनी ही पड़ेगी। किन्तु साथ-साथ हमलोगों को यह दृष्टि भी ठीक रखनी होगी कि ये हमारे सहायक हैं। जो कार्य हमलोग स्वयं नहीं कर पाते हैं, उसी कार्य में ये सब हमारी सहायता करते हैं। इस पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए। तुमलोग राहत-कार्य करने जब जाओगे, तब हमलोग इन असंन्यासियों से श्रेष्ठ हैं, यह बात कभी भी मन में न लाना।

तत्पश्चात् बात यह हो रही है कि हमलोग जिनकी सेवा कर रहे हैं, उनलोगों से हमलोग श्रेष्ठ हैं, ये बात सहज रूप से हमलोगों के मन में आ सकती है। क्योंकि वे सब हमलोगों के पास सहायता माँगने आ रहे हैं। किन्तु हमलोगों को ऐसा सोचने का कोई अधिकार नहीं है। हमलोग दूसरे से जो भिक्षा प्राप्त करते हैं, उसे ही अभावग्रस्तों को, सहायता माँगनेवालों को देते हैं। वह उनका ही प्राप्य है। हमलोग उन पर दया नहीं कर रहे हैं। बीच में हमलोग दान के माध्यम से उनकी सेवा कर रहे हैं, यह भावना रखनी होगी। इस सेवा-भावना पर स्वामीजी ने बहुत जोर दिया है। ठाकुर की बात है – दया नहीं सेवा। यदि यह भाव न रहे, तो हमलोगों का कार्य भूत का बोझा ढोना होगा। **इस भाव को खो देने से तो अनर्थ हो जायेगा, सर्वनाश हो जायेगा। हमारे पुराने साधु सदा इस भाव को जगाने के लिए कहते थे – ठाकुर, श्रीमाँ, स्वामीजी का कार्य है। स्वामीजी का कार्य है, यह बात उस समय बहुत प्रचलित थी। स्वामीजी का कार्य अर्थात् हमलोग उनके सेवक होकर वहाँ कार्य कर रहे हैं। यह भावना रहेगी, तभी तो साधना होगी। ऐसा नहीं होने से तो हमलोगों का अहंकार, अभिमान आदि बढ़ जायेगा।** सम्भवत: तुम कह सकते हो, यह आदर्श हो सकता है, किन्तु उस आदर्श को लेकर हमलोग कितना चल सकते हैं? यह बात सत्य है। किन्तु देखो, जप का भी तो अर्थ है मन-प्राण को पूर्णत: उनके चरणों में समर्पित करके उनका चिन्तन करना। किन्तु वह भी हमलोग कितना कर सकते हैं? सभी कार्यों के सम्बन्ध में भी यही बात है। सम्पूर्ण मन-प्राण से जो कार्य करेंगे, वह ठीक-ठीक साधना होगी। नहीं तो ऐसा लगेगा – ''वह क्या टो-टो करके घूम रहा है, मैं अकेले दस हजार जप करता हूँ।'' उससे भी अभिमान बढ़ जायेगा। कहाँ तो जप करने से अभिमान दूर होगा, वह नहीं, अभिमान बढ़ रहा है! तब क्या जप करना बंद कर देना होगा? ऐसा नहीं करना है। अत: कार्य करते समय भाव जिससे बना रहे, उस सम्बन्ध में सावधान रहने की आवश्यकता है।

मैं तुमलोगों से सहमत हूँ कि बात कहना सरल है, किन्तु करना कठिन है। आदर्श को पूर्ण रूप से अनुसरण करना कठिन है। किन्तु आदर्श को लक्ष्य बनाकर हम सभी लोग

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

श्रीरामकृष्ण-गीता (२२)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

रश्मौ सूर्यस्य सर्वत्र समं हि प्रतितेऽपि च।
तत्प्रकाशोऽधिकस्तोयाद्दर्शादिस्वच्छवस्तुषु ।।३६।।

– सूर्य की किरण सर्वत्र समान रूप से पड़ने पर भी जल में, दर्पण में और अन्य सभी स्वच्छ वस्तुओं में अधिक दृष्टिगोचर होती है।

समञ्च हृत्सु सर्वेषां भगवतो विकाशनम् ।
प्रकाशो हृत्सु साधुनां तथापि लक्ष्यतेऽधिकः।।३७।।

– भगवान का प्रकाश सबके हृदय में समान रूप से होने पर भी सन्तों के हृदय में अधिक प्रकाशित है।

बाह्याकारे समत्वेऽपि यद्वत् सकलपिष्टकाः।
अन्तस्थपभेदात्तु भिन्ना भिन्नस्तथापि ते ।।
केचिद्वा क्षीरगर्भाश्च केश्चिद्वा नारिकेलकाः।।३८।।
नरास्तथैकजातित्वात् समाना अपि वाह्यतः।
वैषम्यात्तु तथापि स्युः स्वतन्त्रा गुणतो हि ते ।।३९।।

– सभी पीठों का बाह्य रूप एक समान होने पर भी भीतर की वस्तु में भेद रहता है। किसी में नारियल का, तो किसी में पनीर भरा रहता है। उसी प्रकार सभी मनुष्य एक समान होने पर (सत्त्व, रज, तम) गुण के कारण पृथक होते हैं।

आपो नारायणः सर्वा विदिता इति यद्यपि।
पानाय नैव युज्यन्ते सर्वा आपस्तथापि हि ।।४०।।
स्थानानैव च सर्वाणि धामानि हीश्वरस्य च।
तानि गमन योग्यानि सर्वाण्यैव तथापि न ।।४१।।

– सभी जल नारायण हैं, किन्तु सभी जलों को पीया नहीं जाता है। सर्वत्र ईश्वर हैं, किन्तु सर्वत्र जाया नहीं जाता है। **(क्रमशः)**

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

चल सकते हैं। कार्य कठिन है, किन्तु हमलोग जिस पथ पर आये हैं, वह पथ ही तो कठिन है। तुमलोग कहोगे – 'क्या आप पूर्ण रूप से करते हैं? मैं कहूँगा – नहीं, मैं पूर्णतः नहीं कर पाता। किन्तु आदर्श-जीवन को मैंने आँखों से देखा है, यह जानता हूँ। यदि उस आदर्श को मानकर मैं उस पर चल नहीं सकता, तो वह मेरी भूल है। किन्तु आदर्श को पकड़े रहना होगा। आदर्शहीन होने से हमारा जीवन पतवारविहीन नाव जैसा हो जाता है। ठाकुर, श्रीमाँ और स्वामीजी, ये लोग हमारे आदर्श हैं, हमलोगों की आँखों के सामने विद्यमान हैं। केवल शास्त्र नहीं, ये जीवन्त शास्त्र हैं। शास्त्र जिनसे प्रमाणित होता है, ऐसे मानव हैं ये लोग। ऐसे चरित्र को लक्ष्य बनाकर चलने से हमलोगों का मन कुछ तो उन्नत होगा। क्योंकि हमलोगों को देखकर ही लोगों की ठाकुर, श्रीमाँ और स्वामीजी के सम्बन्ध में धारणा होगी। प्रति पल हमलोगों को ध्यान रखना होगा, हमलोग सामान्य मनुष्य नहीं हैं। हमलोग ठाकुर, श्रीमाँ, स्वामीजी के प्रतिनिधि हैं। मन में दृढ़ संकल्प करना होगा, जिससे हमलोग अपने को बड़ा न समझें। स्वामी योगानन्द जी ने ठाकुर को उद्यान का माली समझकर कहा था – ''अरे माली ! ये फूल तोड़कर दो तो?'' ठाकुर ने कुछ न कहकर फूल तोड़ कर दे दिया था। बाद में जानकर योगानन्दजी घबरा गये थे। किन्तु ठाकुर को कुछ भी बुरा नहीं लगा। इतनी निरभिमानिता थी ! हमलोग यदि अपने को उनका दासानुदास कहते हैं और कर्तापन का अहंकार रखें, तो हमलोग उनलोगों को अस्वीकार कर रहे हैं। हमलोग उनके दास हैं, यह बात हमलोग अपने कार्य-क्षेत्र में अस्वीकार कर रहे हैं।

कर्तापन का अहंकार रहने से कर्मयोग नहीं होगा। ''मैं, मैं'' यदि करो, तो उनका कार्य नहीं होगा। तुम्हारा कार्य होगा। तब तुम्हें भुगतना होगा। यदि 'उनका कार्य है', ऐसा बोध रहे, तो कर्मफल से मुक्त हो जाओगे। यदि ठाकुर के प्रति श्रद्धा हो, उनके आदर्श के प्रति श्रद्धा हो, तो पैर बेताल नहीं पड़ेगा। ○○○ **(समाप्त)**

श्रीरामकृष्ण का आकर्षण

स्वामी अलोकानन्द, रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

अनुवाद – अवधेश प्रधान, वाराणसी

(गतांक से आगे)

गिरीश – ''तब गुरु क्या वस्तु है, उसका कुछ आभास मेरे हृदय में आया, मुझे लगा – गुरु ही सर्वस्व हैं। जिसके गुरु हैं, उसके ऊपर पाप का बस नहीं चलता, उसका साधन-भजन निष्प्रयोजन है। मेरी दृढ़ धारणा हुई – मेरा जन्म सफल हो गया।''[७९]

यहाँ तक हमने चुम्बक का आकर्षण देखा। लेकिन श्रीरामकृष्ण ने कहा था, ''अन्त में भक्त ही चुम्बक पत्थर हो जाते हैं और ईश्वर सुई हो जाते हैं।'' इस विषय में अनेक दृष्टान्त रहने के बावजूद हम यहाँ गिरीशचन्द्र के जीवन की एक घटना उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत करते हैं, ''उनको मैंने परम आत्मीय जाना है, लेकिन संस्कार के बंधन बहुत मजबूत होते हैं। एक दिन थिएटर में मैंने उनको मतवालेपन के वशीभूत होकर कितनी ही अकथनीय गालियाँ दीं, उनके भक्त कुपित होकर मुझे मारने को उद्यत हो गए, उन्होंने उन्हें रोक लिया। मेरा भी कविताई का मुँह चलता ही रहा। मैंने उनसे हठ किया, ''तुम मेरे बेटे हो जाओ।'' उन्होंने कहा, ''क्यों? तुम्हारा गुरु होऊँगा, इष्ट होऊँगा।'' मैंने कहा, ''नहीं, तुम मेरे बेटे हो जाओ।'' उन्होंने कहा, ''मेरे पिता अत्यन्त निर्मल थे – मैं तुम्हारा बेटा क्यों होऊँगा?'' मेरे मुँह का जोर जहाँ तक सम्भव हुआ, चला। वे दक्षिणेश्वर लौट गए। मेरे मन में थोड़ी भी शंका नहीं थी। प्यार-दुलार के मारे कोई बिगड़ा हुआ लड़का जिस प्रकार बाप को गाली देकर निश्चिन्त रहता है, मैं भी उसी प्रकार परमहंस देव के दुलार में, बिगड़ैल लड़के जैसा काम करके भी निर्भय रहा। बाद में बहुत लोग बहुत बोलने लगे – यह काम अच्छा नहीं हुआ – धीरे-धीरे यह बात मुझे भी समझ में आई, लेकिन तब भी परमहंस देव के स्नेह पर मेरा इतना भरोसा था, उनका स्नेह इतना असीम था कि मेरे मन में एक बार भी आशंका पैदा नहीं हुई कि वे मेरा त्याग कर देंगे। दक्षिणेश्वर में कई लोग उनसे कहने लगे कि उस प्रकार के बुरे आदमी के पास आप जाते हैं? केवल एकमात्र रामचन्द्र दत्त ही थे, जिन्होंने कहा था – 'महाशय, वे आपकी पूजा करते हैं। कालिय नाग ने भगवान से कहा था कि आपने मुझे विष दिया है, मैं आपको अमृत कहाँ से दूँगा? गिरीश घोष को भी आपने जो दिया है, उसने उसी के द्वारा आपकी पूजा की है।' परमहंस कहने लगे, ''सुनो, सुनो, राम की बात सुनो।'' फिर कई लोग मेरी निन्दा करने लगे। प्रभु ने कहा, ''गाड़ी लाओ, मैं गिरीश घोष के घर जाऊँगा। स्नेहमय परम पिता मेरे मकान पर आकर उपस्थित हुए। जन्मदाता पिता जिस अपराध के कारण पुत्र का त्याग कर देते हैं, उस अपराध को मेरे परम पिता ने अपराध ही नहीं माना। वे मेरे मकान पर आए, मैं दर्शन प्राप्त करके धन्य हो गया। किन्तु दिन पर दिन मन में संकोच का भाव रहता था। वे स्नेहमय हैं – यह धारणा पूरी तरह बनी रही, लेकिन अपने कार्य की आलोचना करते हुए मैं लज्जित होने लगा। भक्तगण कितने प्रकार से उनकी पूजा करते हैं, सोचने लगा। अपने को धिक्कारने लगा। इसके कुछ दिनों बाद भक्त चूड़ामणि देवेन्द्रनाथ मजूमदार के निवास पर प्रभु उपस्थित हुए। मैं भी वहाँ पहुँचा। चिन्तित अवस्था में मैं बैठा था, उन्होंने भावावेश में कहा, ''गिरीश घोष, तू कुछ चिन्ता मत कर, तुझको देखकर लोग अवाक् रह जायेंगे।'' मैं आश्वस्त हुआ।''[८०] इस प्रकार 'कीर्तिनाशा गिरीशचन्द्र को पुण्यस्रोता सागरवाहिनी' बनाने में श्रीरामकृष्ण के 'अज्ञात सूत्र' का आकर्षण कितना दुर्दमनीय, कितना अनुपेक्षणीय था, यह विचार करने का विषय है।

सुरेन्द्रनाथ मित्र

'श्रीरामकृष्ण वचनामृत' के प्रणेता महेन्द्रनाथ गुप्त लिखते हैं, ''धन्य हो सुरेन्द्र ! यह पहला मठ तुम्हारे ही हाथों निर्मित हुआ ! तुम्हारी पवित्र इच्छा से यह आश्रम हुआ। तुमको यंत्र बनाकर ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने अपने मूल मंत्र कामिनी-कांचन त्याग को मूर्तिमान किया।''[८१]

सुरेन्द्र एक दिन में या बिना साधना किए ही 'धन्य' नहीं हुए। इसके पीछे था बहुत-सा आकर्षण का घटना-प्रवाह। अनेक घात-प्रतिघातों ने, नाना प्रकार की परीक्षा-निरीक्षाओं

ने सुरेन्द्र को 'धन्य' किया था।

डस्ट कम्पनी के मैनेजर सुरेन्द्रनाथ मित्र की तीन-चार सौ रुपये मासिक आय थी। शरीर सुगठित, गौरवर्ण बलवान था। मदिरा-पान से सुरेन्द्र का बड़ा प्रेम था।[८२] गिरीशचन्द्र की गुणावली का कुछ सादृश्य सुरेन्द्र के चरित्र में दिखाई देता था। इसीलिए जब एक दिन गिरीश बाबू को दिखाकर श्रीरामकृष्ण ने सुरेन्द्र से कहा, ''तुम क्या हो? ये तुम्हारी अपेक्षा . . .'' तब सुरेन्द्र ने भी समर्थन के स्वर में कहा, ''जी हाँ, मेरे बड़े भाई हैं।''[८३] भाई के ऊपर श्रीरामकृष्ण के आकर्षण का प्रभाव हमने देखा है, अब देखेंगे कि छोटे भाई के ऊपर वह प्रभाव कैसा पड़ा था।

सुरेन्द्र की उम्र उस समय अनुमानत: तीस वर्ष रही होगी। इहलौकिक सुख-सुविधाएँ रहने के बावजूद मनुष्य के जीवन में बीच-बीच में हताशा आ जाती है। वह हताशा कई बार उसके जीवन को चरम सीमा तक ले जाती है। किन्तु कोई-कोई भाग्यवान 'गुरुकर्णधार' को प्राप्त कर जीवन की सार्थकता प्राप्त कर लेते हैं। श्रीरामकृष्ण तो साधारण गुरु नहीं थे, वे तो 'विषधर नाग' थे। उसी 'विषधर नाग' के काटने से 'गुप्त महेन्द्र' जीवन की हताशा को काटकर हताशाग्रस्त भावी मानव जाति के लिए 'कलियुग के भागवत'(श्रीरामकृष्ण-वचनामृत) की रचना कर गए। फिर गिरीशचन्द्र ने स्वयं 'आश्वासन' प्राप्त करके लोकशिक्षा के लिए थिएटर के माध्यम से श्रीरामकृष्ण की अमृतमयी जीवन-वार्ता को पतित, दरिद्र, तापित मनुष्य के पास पहुँचा दिया।

सुरेन्द्र के बाह्य जीवन की सुख-सुविधाओं की आड़ में मानसिक कष्ट एक अन्तिम मोड़ की तरह आया। इसीलिए उस समय उन्होंने विषपान करके जीवन का अन्त कर डालने का निश्चय कर लिया था। लेकिन वे यह नहीं जानते थे कि उस समय श्रीरामकृष्ण के अदृश्य सूत्र से जुड़ने की तैयारी चल रही थी। पूर्वपरिचित मित्र और श्रीरामकृष्ण के भक्त रामचन्द्र दत्त और मनोमोहन मित्र ने उनको एक बार श्रीरामकृष्ण के पास जाने का परामर्श दिया। उनकी प्रतिक्रिया नास्तिक सुरेन्द्र के शब्दों में इस प्रकार थी, ''देखो, तुम लोग उनको श्रद्धा करते हो, ठीक है, मुझको उस जगह क्यों ले जाओगे? जैसे हंसों के बीच में बगुला ! बहुत देखा है, यदि उन्होंने कोई अनुचित बात कही, तो मैं उनके कान मल दूँगा !''[८४]

लेकिन घटना कुछ दूसरी तरह से घटी। सुरेन्द्र मित्रों की बात मानकर दक्षिणेश्वर गए। स्वाभाविक रूप से ही बिना प्रणाम किए आसन पर बैठ गए और सुना कि श्रीरामकृष्ण देव कह रहे हैं, ''लोग बंदर का बच्चा होना क्यों चाहते हैं? बिल्ली का बच्चा होने से ही तो अच्छा है, बंदर का स्वभाव यह है कि वह इच्छापूर्वक अपनी माता को कसकर पकड़े, तभी वह उसको दूसरी जगह ले जाएगी। लेकिन बिल्ली के बच्चे का स्वभाव वैसा नहीं होता, उसकी माँ जिस जगह पर रख देती है, उसी स्थान पर पड़े-पड़े ''म्याऊँ म्याऊँ'' करता रहता है। बंदर के बच्चे का स्वभाव ज्ञान-प्रधान है और बिल्ली के बच्चे का भक्ति-प्रधान।''[८५] स्वाधीन चेता, अहंकारी सुरेन्द्र के मन में हुआ मानो यह उन्हीं को उद्देश्य करके उपदेश दिया गया है। उनके अपने व्यक्तिगत जीवन की सभी समस्याओं का समाधान हो गया। अविश्वास के मेघ को हटाकर विश्वास रूपी सूर्य झाँकने लगा। ''सुरेन्द्र को किनारा मिल गया, सुरेन्द्र स्थिर हो गए।''[८६] 'रामकृष्ण पूँथी' के रचनाकार ने अनुपम भाषा में सुरेन्द्र की अवस्था का वर्णन इस प्रकार किया है –

सुरेन्द्रनाथ मित्र

''रामकृष्ण देव की यह उक्ति सुरेन्द्र के प्राणों में अच्छी तरह प्रवेश कर गई, माँ जहाँ रखेगी, वहीं रहूँगा। विषपान करके प्राणत्याग क्यों करूँगा? देखता हूँ, माँ की लीला, मुझे किस प्रकार रखती है? अन्त में उस दिन संध्या होने को आई। घर दूर है, शहर लौटना होगा। मित्र के साथ सुरेन्द्र विदा होते समय प्रभु की पदधूलि लेकर प्रभु के चरणों में लोट गए।''[८७] इसके बाद प्रति रविवार को दक्षिणेश्वर में जाना सुरेन्द्र का एक नियम हो गया। उनके मुँह से सुना गया, '' 'उनके कान मल दूँगा', ऐसा कहकर गर्व किया था, लेकिन लौटते समय उनसे कान मलवा कर आया। वे क्या ऐसे वैसे गुरु हैं !''[८८]

सुरेन्द्र ने भी 'चुम्बक' को खींचा। वे अब नित्य मन्दिर में ध्यान का अभ्यास करते। एक दिन उनके मन में इच्छा जागी कि पूजा-गृह में यदि ठाकुर का आविर्भाव हो, तब

जानूँ कि ठाकुर अवतार हैं।

''कुछ ही क्षण बाद उन्होंने देखा
कि घर में उनके प्रभु उपस्थित हैं।
इसी प्रकार तीन बार परीक्षा के बाद
सुरेन्द्र प्रभु के चरणों में निर्भर भाव से पड़ गए।''[८९]

सुरेन्द्र का जीवन-प्रवाह बदल गया। अब वे श्रीरामकृष्ण-गतप्राण हो गए। उन्होंने स्वयं को सर्वतोभावेन उनकी सेवा में लगा दिया। जो कुछ काम-काज करना है, उसे आराम से करते, कोई अड़चन का अनुभव नहीं करते। लेकिन मन हमेशा स्मरण-मनन में डूबा रहता। फिर प्रभु की सेवा करने पर मन-ही-मन थोड़ा-सा अहंकार भी हो जाता। श्रीरामकृष्ण की दृष्टि से यह बात छिपी नहीं रही। इसीलिए खाँटी सोना बनाने के लिए उन्होंने एक दिन शासन-दंड उठा लिया। १८८१ ई. के आषाढ़ महीने में किसी दिन संध्या से कुछ पूर्व ठाकुर सुरेन्द्र के मकान के दूसरे तल्ले पर भक्तमंडली से घिरे हुए धर्मचर्चा कर रहे थे। सुरेन्द्र एक माला लेकर ठाकुर को पहनाने गए। ठाकुर ने हाथ में माला लेकर फेंक दिया। सुरेन्द्र पश्चिमी बरामदे में जाकर रोने लगे और उपस्थित भक्तों से बोले, ''राढ़ देश का बाम्हन इन चीजों की आदर क्या जाने ! कितना रुपया खर्च करके यह माला खरीदी थी। क्रोध में बोला, बाकी सब मालाएँ और सभी लोगों के गले में पहना दो। अब मैं समझ पा रहा हूँ अपना अपराध – भगवान पैसे के नहीं हैं, अहंकार के नहीं हैं ! मैं अहंकारी हूँ, मेरी पूजा वे क्यों स्वीकार करेंगे? मेरी जीने की इच्छा नहीं है।''[९०]

अनुताप के आँसुओं ने समस्त अहंकार को धोकर पोंछ डाला। श्रीरामकृष्ण ने भी देखा, भक्त का मन शुद्ध हो गया है। इसलिए अनुतप्त के प्रति कृपा के प्रदर्शन हेतु उन्होंने इस परित्यक्त माला को उठाकर मधुर छंद में नृत्य करते-करते गले में डाल लिया। नृत्य के अन्त में बोले, ''मुझे कुछ खिलाओगे नहीं?''[९१] अन्त:पुर में जाकर कुछ खाया और सुरेन्द्र का मन एक अनिर्वचनीय आनंद से परितृप्त हो गया।

फिर भी संस्कार नहीं जाता। सुरेन्द्र का मद्यपान अविराम चलता रहा, साथ ही बुरी संगति भी जारी रही। मित्रवर रामचन्द्र दत्त आदि अनेक लोगों ने जब उनसे मद्यपान छोड़ देने को कहा, तो वे बोले, ''भाई, यदि त्याग करना ही उचित होता, तो परमहंस महाशय ने क्या ऐसा कहा न होता?[९२] जैसे भी हो, परमहंस देव का निर्देश जानने के लिए सुरेन्द्र पहुँचे। श्रीरामकृष्ण यथार्थ आचार्य थे, भवरोग वैद्य थे। उन्होंने सीधे-सीधे मद्यपान छोड़ने का निर्देश न देकर कहा, ''देखो, जो कुछ भी खाना-पीना, माँ काली को निवेदित करके खाना-पीना; और ध्यान रखना कि सिर न घूमे, पैर न डगमगाए। उनका चिन्तन करते-करते तुम्हें शराब पीना और अच्छा नहीं लगेगा। वे (भगवती जगदम्बा) कारणानन्ददायिनी हैं। उनको प्राप्त करने पर सहजानन्द होता है... पहले कारणानन्द होगा, उसके बाद भजनानन्द।''[९३] श्रीगुरु के निर्देश का यथावत् पालन करके सुरेन्द्र अब भजनानन्द में मग्न हो गए।

लेकिन पूर्वस्वभाववश एक रविवार को अभिमान से भरे हुए वे दक्षिणेश्वर नहीं गए। मित्रों ने श्रीरामकृष्ण देव को बताया, सुरेन्द्र फिर से बुरी संगति में जा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण जानते थे, मछली को किस तरह खेलाकर डर को भगाना होता है। इसीलिए वे इस समाचार से विचलित न होते हुए बोले, ''अच्छा, अब भी कुछ भोग-वासना है, कुछ दिन भोग कर ले, इसके बाद वह सब और नहीं रहेगा, वह निर्मल हो जाएगा।''[९४] बाद में एक दिन सुरेन्द्र दक्षिणेश्वर में उपस्थित हुए। लज्जित भाव से कुछ दूर बैठे हुए थे। श्रीरामकृष्ण ने हँसते-हँसते कहा, ''क्यों जी, चोर की तरह इस प्रकार दूर जाकर क्यों बैठे हो? आगे आकर पास बैठो।'' सुरेन्द्र निकट आ गए, तो भावावस्था में श्रीरामकृष्ण बोले, **''अच्छा, लोग जब कहीं जाते हैं, तब माँ को साथ लेकर क्यों नहीं जाते? माँ के साथ रहने पर बहुत-से बुरे काम से बचा जा सकता है।''**[९५] इसके बाद सुरेन्द्र के जीवन में एक नया क्षितिज खुल गया।

मद्यप, नास्तिक, कठोर हृदय सुरेन्द्र के लिए श्रीरामकृष्ण अब केवल परमहंस ही नहीं रहे, वे उनके गुरु, इष्ट जीवनसर्वस्व, सर्वदेवदेवीस्वरूप हो गए। इसीलिए अब से उन्होंने घर के मन्दिर में श्रीप्रभु की सेवा में स्वयं को लगा दिया। फूल, माला से सजाते। काशीपुर में ठाकुर की सेवा के खर्च का मुख्य भाग वे ही देते रहे। इसके अतिरिक्त अपनी इच्छानुसार ठाकुर के लिए फल, फूल इत्यादि लेकर आते और ठाकुर के श्रीअंगों को पुष्प-माल्यादि की सहायता से सजा देते। गर्मी में ठाकुर को कष्ट होगा, इसलिए खस का परदा खरीद लाए थे।

१८८६ ई. १ वैशाख, मंगलवार। सुरेन्द्र ऑफिस की छुट्टी के बाद चार नारंगी और दो फूल की मालाएँ लेकर रात को आठ बजे काशीपुर उद्यान में पहुँचे। आवेग के साथ बोले, ''आज पहला वैशाख है, फिर मंगलवार भी है, कालीघाट जाना नहीं हो पाया। सोचा जो काली हैं, जिन्होंने काली को ठीक-ठीक पहचाना है, उनका दर्शन करने से ही हो जाएगा।''[९६] फिर यह बात भी कही – संक्रान्ति के दिन वे ठाकुर के पास आ नहीं पाए, इसीलिए घर में ही ठाकुर की फोटो को फूल से सजा दिया था। श्रीरामकृष्ण ने सब सुनकर कहा, ''अहा ! क्या भक्ति है !''[९७]

चुम्बक ने अपने आकर्षण से पकड़ रखा था, इसलिए सुरेन्द्र के पैर ऊबड़-खाबड़ में नहीं पड़े। कोई एक अदृश्य, अज्ञात शक्ति उनको हमेशा सुमार्ग में लेकर चल रही थी। भक्त-भगवान का यह ईश्वरीय सम्पर्क साधारण बुद्धि के लिए अगम्य है। इसीलिए भक्त के आकर्षण से भगवान भी आकृष्ट हुए। १८८५ ई. की दुर्गापूजा के समय श्रीरामकृष्ण अस्वस्थ शरीर लेकर श्यामपुकुर में थे। सुरेन्द्र के मकान पर दुर्गापूजा थी। श्रीरामकृष्ण वहाँ नहीं जा पाए थे। सभी भक्तों के उपस्थित होने के बावजूद आनन्द में यह एक बड़ी भारी कमी रह गई थी। लेकिन श्रीप्रभु भक्त के आकर्षण में वहाँ उपस्थित हुए और भक्त को आनन्द प्रदान किया। यह घटना श्रीरामकृष्ण पूँथी की अनुपम भाषा में इस प्रकार है –

''श्रीप्रभु के वीरभक्त सुरेन्द्र इस समय प्रतिमा के सामने खड़े थे, दोनों आँखों के आँसुओं से कपोल भींग गए थे, कमोबेश छह दंड रात्रि बीत चुकी थी, घर में चारों ओर दीपक जल रहे थे, दीपों के प्रकाश में रात का पता नहीं चलता था, न्यौते के निभाव के लिए लोग आ-जा रहे थे, सुरेन्द्र समान भाव से खड़े थे प्रभु की मोहन मूर्ति का मन में ध्यान करते हुए। उसी समय उन्होंने देखा कि प्रतिमा के मध्य स्वयं प्रभु का अधिष्ठान है। इधर प्रभु भक्तों से कह रहे थे – सुरेन्द्र के घर पर जाने को मन हुआ, मन में इस इच्छा के उदय होते ही मैंने क्षणभर के ही भीतर देखा – ज्योतिर्मय सुविस्तृत पथ है, इसी से होकर सुरेन्द्र का घर है, पूजा के दालान में अम्बिका का आविर्भाव हुआ है, प्रतिमा के शरीर पर कैसी सुंदर कान्ति फूट रही है, उसकी प्रभा से दीपमाला की भी ज्योति फीकी पड़ गई है, तुम सभी एक साथ मिलकर सुरेन्द्र के घर पर प्रतिमा का दर्शन करने जाओ।''[९८]

विजयादशमी के दिन सुरेन्द्र का मन खराब था। इसीलिए वे श्यामपुकुर में ठाकुर के पास उपस्थित हुए। वचनामृत में लिखा है – ''सुरेन्द्र – घर से भाग आये। श्रीरामकृष्ण (मास्टर से) माँ बस हृदय में रहें। सुरेन्द्र माँ-माँ करते हुए परमेश्वरी के बारे में कितनी बातें कहने लगे। ठाकुर सुरेन्द्र को देखते-देखते अश्रु विसर्जन कर रहे हैं। मास्टर की ओर देखकर गद्‌गद स्वर में कह रहे हैं – अहा कैसी भक्ति है ! ईश्वर के लिए कैसा अगाध प्रेम। श्रीरामकृष्ण – कल ७.३० बजे के लगभग मैंने देखा, तुम्हारे दालान में माँ की प्रतिमा हैं, चारों ओर ज्योतिर्मय है। यहाँ-वहाँ सब एक हो गया है। दोनों ओर से मानो ज्योत की एक तरंग बह रही है – इस घर से तुम्हारे उस घर तक !''[९९]

भक्त के आकर्षण से भगवान उपस्थित हुए। श्रीरामकृष्ण देव-गतप्राण सुरेन्द्र श्रीरामकृष्ण के आकर्षण की उपेक्षा नहीं कर पाए और एक दिन दक्षिणेश्वर में उनके कान मलने गए और उनको अपने ही कान मलवाने पड़े। उसके बाद से उन्हीं के आकर्षण में संसार के समस्त द्वन्द्वों के बीच भी वे उनके पास पहुँचते रहे। बदले में अशेष प्रेम, अहैतुकी कृपा प्राप्त करते रहे।

जब श्रीरामकृष्ण स्थूल शरीर में विद्यमान थे, उनका प्रथम जन्मोत्सव १८८१ ई. में अनुष्ठित हुआ था। उसके आयोजक सुरेन्द्रनाथ थे। इसके अतिरिक्त 'सुरेन्द्र का पट' नाम से विख्यात ठाकुर की सर्वधर्म समन्वय बोधक छवि भी उनकी अतुलनीय कीर्ति और श्रीरामकृष्ण के प्रति गहरी श्रद्धा का परिचायक है। इस छवि को श्रीरामकृष्ण ने स्वयं देखा था। श्रीरामकृष्ण ने उनको 'आधा रसददार' कहा था। फिर काशीपुर में रहते समय ठाकुर ने उनसे कहा था, ''देखो सुरेन्दर, ये सब क्लर्क-किरानी कच्चे-बच्चे वाले लोग हैं, ये लोग इतना रुपया चन्दा करके कैसे जुटा पाएँगे, इसलिए भाड़ा का सब रुपया तुम्हीं देना।''[१००] श्रीरामकृष्ण के आकर्षण का (या कान मलने का) क्या प्रभाव था! **(क्रमशः)**

सन्दर्भ ग्रन्थ – ७९. ठाकुर श्रीरामकृष्ण ओ स्वामी विवेकानन्द, वही, पृ. ९-१० **८०.** वही, पृ. १६-१७ **८१.** श्रीरामकृष्ण-कथामृत, पृ. १२३४ **८२.** भक्तमालिका, भाग-२, पृ. २७४ **८३.** कथामृत, पृ. ८९२ **८४.** भक्तमालिका, पृ. २७४-७५ **८५.** वही, पृ. २७५-७६ **८६.** वही, पृ. २७६ **८७.** श्रीरामकृष्ण-पूँथी, पृ. २६५ **८८.** भक्तमालिका, भाग-२, पृ. २७६ **८९.** पूँथी, पृ. २६६ **९०.** भक्तमालिका, भाग-२, पृ. २७८ **९१.** वही, पृ. २७८ **९२.** वही, पृ. २८१ **९३.** वही **९४.** वही, पृ. २८२ **९५.** वही **९६.** कथामृत, पृ. ११३५ **९७.** वही, पृ. ११३६ **९८.** पूँथी, पृ. ५९१ **९९.** कथामृत, पृ. १०१७ **१००.**लीलाप्रसंग, दिव्य भाव और नरेन्द्रनाथ, पृ. १९५

गीतातत्त्व-चिन्तन (१४)

ग्यारहवाँ अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ, ९वाँ और १०वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' में प्रकाशित हो चुका है। अब प्रस्तुत है ११वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

भगवान का चतुर्भुज रूप सौम्य और कमनीय

सम्भवत: कभी एकान्त क्षणों में अर्जुन ने प्रार्थना की हो तो उन्होंने उसे अपना वह रूप दिखाया हो। बहुत सम्भव है कि अर्जुन ने सुना हो कि भगवान का जो चतुर्भुजरूप है, वह अत्यन्त मोहक, अत्यन्त कमनीय, अत्यन्त मानुषी रूप है। मनुष्य मनुष्य से ही प्रेम कर सकता है। मनुष्य के भीतर से जो प्रेम की सरिता उमड़ती है, वह मनुष्य के लिए ही हो सकती है। हम भले ही कहें कि हम सभी प्रकार के प्राणियों से प्रेम करते हैं, पर हमारा स्वाभाविक प्रेम केवल मनुष्य जाति की ही ओर जाता है। किसी मनुष्य से ही हम प्रेम करना चाहते हैं। इसीलिए अर्जुन भगवान से अपने चतुर्भुज मानुषी रूप में प्रकट होने की प्रार्थना करता है। हमने इस विषय पर पहले चर्चा की थी कि अर्जुन तो भगवान के द्विभुजरूप को ही जानता था, इसलिए उसे प्रार्थना करनी ही थी, तो कहता – अपने उसी द्विभुज मानुषी रूप में आ जाइए। आपके उसी रूप के मैं दर्शन करना चाहता हूँ। पर यहाँ पर अर्जुन ऐसा कहता नहीं है। भगवान से उनके विश्वरूप का संवरण कराकर उनका चतुर्भुजरूप देखना चाहता है, क्योंकि उसने सुन रखा है कि उनका वह रूप अत्यन्त कमनीय है। इस दो भुजावाले रूप की अपेक्षा वह रूप अधिक सौम्य है। अधिक करुणापरक है। इसीलिए उस रूप को ही दिखाने की भगवान से प्रार्थना करता है। कृष्ण का दो भुजाओंवाला रूप तो हमेशा अर्जुन के साथ है। बचपन से ही अर्जुन ने उनके उसी रूप को देखा है। वह कृष्ण का नित्यरूप है। अभी वह उनके विश्वरूप को देख रहा है और उनसे चतुर्भुजरूप को दिखाने की प्रार्थना कर रहा है। भगवान उसकी प्रार्थना के उत्तर में कहते हैं –

अनन्य भक्ति ही उपाय

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्।।४७।।

अर्जुन (हे अर्जुन !) मया प्रसन्नेन आत्मयोगात् (मैंने अनुग्रहपूर्वक अपनी योगशक्ति से) इदम् मे परम् तेजोमयम् (यह मेरा परम तेजोमय) आद्यम् अनन्तम् विश्वम् रूपम् तव दर्शितम् (अविनाशी अनन्त विराटरूप तुझको दिखाया) यत् त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् (जिसे तेरे अतिरिक्त किसी ने पहले नहीं देखा)।

''हे अर्जुन ! मैंने अनुग्रहपूर्वक अपनी योगशक्ति से यह मेरा परम तेजोमय अविनाशी अनन्त विराटरूप तुझको दिखाया है, जिसे तेरे अतिरिक्त किसी ने पहले नहीं देखा।''

भगवान अर्जुन की प्रार्थना के उत्तर में कहते हैं – मैंने तुझ पर प्रसन्न होकर अपने इस महान रूप, परम रूप को आत्मयोग द्वारा तुझे दिखाया। यह रूप अत्यन्त तेज से परिपूर्ण है, विश्वव्यापी, अनन्त और सबसे प्राचीन है। इस रूप को तुझसे पहले और कोई देख नहीं पाया। हमने देखा है कि जब भगवान के इस रूप को अर्जुन देख रहा था, तब संजय भी देख रहा था। परन्तु यहाँ भगवान कुछ गलत कह रहे हैं, ऐसा नहीं सोचना चाहिए। इस बात को तूल नहीं देना चाहिए। भगवान ने अर्जुन से कहा था – मैं कालरूप में जो प्रकट हुआ हूँ, उसे तुझे दिखाने के लिए मैंने यह रूप धारण किया है। अन्य किसी के लिये मैंने यह रूप धारण नहीं किया, यह भगवान का तात्पर्य है। संजय

के लिए भगवान ने कालरूप नहीं धारण किया था। पहले भी उन्होंने जो विश्वरूप दिखाए थे और अर्जुन को जो यह रूप दिखाया, उनमें बहुत भिन्नता है। वह कालरूप नहीं था।

जैसे यशोदा द्वारा मिट्टी खाने की उलाहना दिये जाने पर अपना मुँह खोलकर कन्हैया ने माँ को जो अपना विश्वरूप दिखाया था, वह इस विश्वरूप से भिन्न है। कृष्ण सन्धि का प्रस्ताव लेकर जब कौरवों की सभा में गए थे और दुर्योधन ने उन्हें पकड़ना चाहा था, तब भी कृष्ण ने अपना विश्वरूप दिखाया था, पर इन समस्त विश्वरूपों में भिन्नता है। भगवान ने जिस रूप को अर्जुन के समक्ष प्रकट किया है, उसके लिए कहते हैं, अर्जुन ! मेरे इस रूप को देखने में दूसरा कोई समर्थ नहीं हुआ है। इस रूप की विशेषता यह है कि मैं कालरूप से प्रकट हुआ हूँ। ऐसा अपना कालरूप भगवान ने पहले कभी प्रकट नहीं किया था, जिस कालरूप में अर्जुन भविष्य में घटनेवाली स्थूल घटनाओं को सूक्ष्मरूप में पहले ही देख लेता है। अर्जुन देख लेता है कि किस प्रकार महाभारत का युद्ध होनेवाला है। अर्जुन देख लेता है कि युद्ध में जीत किसकी होगी। वह देख लेता है कि कौरवों और पाण्डवों की सेनाएँ किस प्रकार कालरूप भगवान के द्वारा नष्ट की जा रही हैं। इस सबके स्थूल जगत् में घटने के पहले ही अर्जुन अपनी सूक्ष्मदृष्टि से भगवान के दिव्यरूप में देख लेता है। इसलिए भगवान कहते हैं, 'अर्जुन ! मेरी प्रसन्नता से ही तूने मेरा परमरूप देखा।' इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान की प्रसन्नता से ही उनका दिव्यरूप देखा जा सकता है। मनुष्य तो भगवान को प्रसन्न करने का केवल प्रयत्न ही कर सकता है। हमारी सारी चेष्टाएँ, हमारी सारी साधना भगवान को द्रवित करने के लिए होती हैं, भगवान को प्रसन्न करने के लिए होती हैं। कोई व्यक्ति कहे कि वह अपनी साधना के बल पर भगवान को पकड़ कर ले आएगा, तो उसकी भूल है। भगवान इस प्रकार पकड़ में नहीं आते। भगवान किसी के अहंकार के वश में नहीं आते। वे तो प्रेम के वश में आते हैं। इसीलिए जो व्यक्ति भगवान को पुकारता है, जिसकी साधना भगवान को पुकारने की साधना होती है, जो कहता है, 'प्रभु ! अब तुम्हारे बिना मैं रह नहीं सकता, मैं केवल तुम्हें ही चाहता हूँ।' ऐसी व्याकुलता, अर्जुन जैसी व्याकुलता जब होती है; तब भगवान कृपा करते हैं। अर्जुन भगवान कृष्ण से कहता है, 'मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। मेरी बुद्धि भ्रमित हो गई है। उचित-अनुचित का विचार नष्ट हो गया है। तुम्हीं कृपा करो और कृपा करके मुझे समझा दो। मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ।' व्याकुल होकर कहता है – प्रभु ! शरण में आये हुये की रक्षा करो। भगवान उसकी व्याकुलता से ही तो प्रसन्न होते हैं। वे प्रसन्न होकर अर्जुन को दर्शन देते हैं। भगवान को जो व्याकुल होकर पुकारता है, उसे उनकी प्रसन्नता मिलती है।

भक्त ईश्वर की प्रसन्नता किस प्रकार पा सकता है?

पहले एक बार हमने चर्चा की थी कि गोस्वामी तुलसीदासजी रामजी को पाने का क्या साधन बताते हैं। वे कहते हैं – **मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा –** अनुराग के बिना रघुवीर नहीं मिलते, राम नहीं मिलते। योग, तप और वैराग्य से वे नहीं मिलते। अनुराग कैसे आता है? **होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा।** जब जीवन में विवेक आता है, तब मोह और भ्रम भाग जाते हैं। तभी रघुनाथ के चरणों में अनुराग हो जाता है और उस अनुराग से राम मिलते हैं। इतनी बात तो समझ में आ गई, पर अब यह विवेक कैसे आए? **बिनु सत्संग बिबेक न होई।** बिना सत्संग के विवेक नहीं मिलता। यह सत्संग कैसे मिले? **राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।** रामजी की कृपा के बिना सत्संग नहीं मिलता। अब राम की कृपा कैसे मिले? **बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।** विश्वास ऐसा जिसके सहारे बिल्ली का बच्चा अपनी माँ के दातों के बीच में निश्चिन्त होकर पड़ा रहता है। गोस्वामीजी कहते हैं, इसी प्रकार का विश्वास जब जीव भगवान के लिए व्यक्त करता है – प्रभो ! मैं तो तुम्हारी ही शरण में हूँ। किसी भी प्रकार तुम मेरा अमंगल नहीं करोगे, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। जीवन में प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती हैं। ऐसा नहीं है कि मनुष्य को हर समय अनुकूल परिस्थितियाँ ही मिलें। प्रतिकूल परिस्थितियों से भी मनुष्य को गुजरना ही पड़ता है, परन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जो भगवान का वरदहस्त देखता है, उसी को भगवान पर सच्चा विश्वास है। जिसे ऐसा विश्वास होता है, उसके विश्वास से राम द्रवित होते हैं। द्रवित होकर वे कृपा करते हैं। उनकी कृपा से सत्संग मिलता है। सत्संग से विवेक होता है। विवेक से मोह और भ्रम दूर होते हैं। मोह और भ्रम के दूर होने से अनुराग उत्पन्न होता है और अनुराग से राम मिलते हैं। वही भगवान यहाँ कह रहे हैं – मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्। भगवान अपनी माया शक्ति से ही तो

शेष भाग पृष्ठ ३०७ पर

रामराज्य का स्वरूप (८/४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

इसलिए उन्होंने पहला निराकरण किया

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा।
रघुबर किंकर कुमुद चकोरा।। २/२०८/१

पहला आश्चर्य। फिर, उन्होंने कहा दूसरी बात यह है कि चन्द्रमा उदित होता है, तो अस्त भी होता है। यह बात संसार में यशस्वी लोगों के साथ भी जुड़ी हुई है। कब यश उदित होगा और कब अस्त हो जायेगा, कौन कह सकता है। परन्तु भरत, तुम्हारे यश की विशेषता यह है कि –

उदित सदा अँथइहि कबहूँ ना। २/२०८/२

यह तुम्हारा यश-चन्द्र सदा उदित ही रहेगा, कभी अस्त नहीं होगा। इतना ही नहीं, दूसरी नई बात उन्होंने कही कि चन्द्रमा के बढ़ने की एक सीमा है और उस सीमा के बाद चन्द्रमा का बढ़ना रुक जाता है। परिणाम क्या होता है? किसी की बढ़ने की सीमा समाप्त होती है, तो उसकी ह्रास की स्थिति प्रारम्भ होती है। जैसाकि चन्द्रमा में दिखाई देता है। पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा की पूर्णता हम देख लेते हैं, तब उसके बाद हम यह भी देखते हैं कि दूसरे दिन चन्द्रमा की कान्ति कुछ कम होती है। एक-एक दिन करके कम होते-होते पूरी तरह कान्तिहीन हो जाता है। महर्षि भरद्वाज ने कहा, भरत तुम्हारे यश की विशेषता यह है कि –

घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना।।

यह घटने के स्थान पर दिन दूना बढ़ते जानेवाला है और –

कोक तिलोक प्रीति अति करिही।। २/२०८/३

एक पक्षी है, चकवा-चकवी, उसको चन्द्रमा प्रिय नहीं है। ऐसी मान्यता प्रचलित है कि रात्रि के समय चकवा और चकवी एक दूसरे से अलग हो जाते हैं, एक ऐसी बाध्यता उनके जीवन में है कि रात्रि होते ही दोनों पास नहीं रह पाते। इसी प्रकार से वियोग की सृष्टि करनेवाला चन्द्रमा के समान यशस्वी लोग भी कभी-कभी किसी के लिए दुखद और किसी के लिए सुखद बन जाते हैं। भरत ! तुम्हारा जो यश चन्द्र है, वह राम से मिलानेवाला है।

चन्द्रमा तो चक्रवाक और चक्रवाकी को एक दूसरे से दूर करता है, पर तुम्हारा यश-चन्द्र राम के वियोग को दूर कर के राम से मिलानेवाला है। इसलिए वह चक्रवाक वाला दोष भी तुम्हारे रामचन्द्र में नहीं है। उसके पश्चात् उन्होंने कहा –

निसि दिन सुखद सदा सब काहू। २/२०८/४

दिन में भी सुखद और रात्रि में भी सुखद। चन्द्रमा रात्रि के समय सुखद होता है और दिन में दिखाई दे, तो उसका कोई अर्थ नहीं रहा जाता। पर उन्होंने कहा कि दिन में और रात्रि में; दोनों में सुखद रहेगा। यह दिन-रात्रि का सन्दर्भ है कि विरह और संयोग, इन दोनों दृष्टियों से विचार करके देखें, तो भरत का चरित्र क्या है? वियोग प्रधान है कि संयोग प्रधान है? श्रीभरत वियोगी भक्तों के लिए प्रेरक हैं कि संयोगी भक्तों के लिए प्रेरक हैं? ऐसी स्थिति में श्रीभरत के जीवन में संयोग की पराकाष्ठा है। रामायण में भगवान राम से बहुत से भक्तों का मिलन हुआ, परन्तु श्रीभरत और भगवान का जैसा संयोग हुआ, वैसा संयोग, श्रीभरत और भगवान श्रीराम के मिलन की जैसी पराकाष्ठा है, ऐसा वर्णन कहीं पर भी नहीं मिलता है। यहाँ पर गोस्वामीजी कहते हैं –

परम पेम पूरन दोउ भाई।
मन बुधि चित अहमिति बिसराई।।

कहहु सुपेम प्रगट को करई।
केहि छाया कबि मति अनुसरई ।। २/२४०/२

एक ओर तो मिलन की पराकाष्ठा और दूसरी ओर स्वयं भरत अपनी ओर से वियोग को स्वीकार करते हैं। यह एक नई बात है। मिलन के बाद वियोग की आकांक्षा भला किसके हृदय में होती है? इसलिए जो मिलन वाले भक्त हैं, उनके लिए तो भरत प्रेरक होते हैं, अगर उनकी केवल मिलन की भूमिका होती। पर नहीं ! श्रीभरत ने जिस प्रकार से वियोग को स्वीकार किया, गोस्वामीजी ने उसका बड़ा अद्‌भुत दृश्य प्रस्तुत किया।

चित्रकूट में कई सभाएँ हुईं। सभाओं में यह निर्णय हो गया कि श्रीभरत चित्रकूट से अयोध्या लौट जाएँगे। पर किस दिन लौट जाएँगे, यह कौन कहे? भगवान राम के सामने समस्या यह है कि क्या भरत से मैं यह कहूँ कि अब तुम जाओ? प्रभु तो इतने संकोची हैं कि वे किसी से नहीं कह सकते, तो भरत से कैसे कहें कि अब तुम जाओ? तब एक सभा बुलाई गई और उस सभा की विशेषता यह थी कि उसमें वाणी से भाषण कम हुआ, आँखों का भाषण अधिक हुआ। भगवान ने गुरुजी की ओर देखा और आँखों ही आँखों में भगवान ने कहा कि आप तो हमारे गुरुदेव हैं, आचार्य हैं, आप चाहें तो मार्ग निकल सकता है। आप अगर कह दें कि कल मुहुर्त अच्छा है, अब अयोध्या चलना चाहिए, तो मुझे न कहना पड़े और भरत सरलता से अयोध्या लौट जायें और अयोध्या का राज्य-भार संभाल लें। लेकिन गुरुजी तो चित्रकूट में भरत के रंग में ऐसे रंगे कि उन्होंने आँखें नीची करके मानो यह कहा कि बस, मुझे गुरु का पद भी नहीं चाहिए और मुहुर्त बताने की, यहाँ ज्योतिष शास्त्र की भी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं भरत को तुमसे अलग करने की बात नहीं कर सकता। तब भगवान राम की आँखें राजर्षि जनक से मिलीं। आप तो महान तत्त्वज्ञ हैं, आपके अन्त:करण में मोह का लेश भी नहीं है, आप कह दीजिए कि राजनीति की दृष्टि से बिना किसी शासक के अयोध्या को इस प्रकार छोड़ देना, ठीक नहीं है। इसलिए भरत अयोध्या लौट चलें, मुझे न कहना पड़े। जनकजी ने भी तुरन्त आँखें नीची करके कहा, मुझे तत्त्वज्ञ की उपाधि नहीं चाहिए। मैं भरत को तुमसे अलग करने की कल्पना नहीं कर सकता। अब भगवान राम ढूँढ़ने लगे कि किससे कहें, तो अन्य लोगों ने तो डर के मारे आँखें मिलाना ही बन्द कर दिया। भगवान राम जिधर देखते थे, सबकी आँखें नीचे की ओर हो जाती थीं। इसका परिणाम क्या हुआ? अन्त में भगवान राम की भी आँखें झुक गईं। गोस्वामीजी ने कहा –

गुर नृप भरत सभा अवलोकी।
सकुचि राम फिरी अवनि बिलोकी।। २/३१२/३

एक नया दृश्य हो गया। क्या? वे भरत, जिन्होंने अयोध्या में एक दिन घोषणा की थी –

प्रातकाल चलिहऊँ प्रभु पाहीं। २/१८२/२

तो ऐसा लगा कि श्रीराम से मिलने की, श्रीराम के दर्शन की कितनी व्यग्रता है ! वही भरत चित्रकूट में, जिनकी अभिन्नता को भगवान राम पग-पग पर स्वीकार करते हैं, वे वहाँ खड़े हुए और खड़े होकर क्या सोचा कि अरे ! हमारे प्रभु मुझसे जाने के लिए कहना चाहते हैं, पर कह नहीं पा रहे हैं और हमारे प्रभु सबकी ओर देखकर सब से यह अनुरोध कर रहे हैं, पर हमारे प्रभु के अनुरोध को स्वीकार करने में कोई सक्षम नहीं है। मेरे रहते प्रभु इतने संकोच में पड़ जायें, क्या यह सेवक के लिए उपयुक्त है? खड़े होकर श्रीभरत प्रार्थना करते हैं।

अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई।
सेवौं अवध अवधि भरि जाई।। २/३१२/८

मैं अब जाना चाहता हूँ। प्रभु के आँखों में अश्रुप्रवाह होने लगा। प्रभु जानते हैं कि भरत ही ऐसे भक्त हैं, जहाँ पर संयोग में तो संयोग है ही, पर वियोग में भी जहाँ संयोग है। यह संयोग और वियोग, दोनों में समान रूप से प्रेरक है –

निस दिन सुखद सदा सब काहू।
ग्रसिहि न कैकइ करतबु राहू।। २/२०८/४

बड़ी मीठी बात कही उन्होंने। चन्द्रमा को राहु ग्रस लेता है। संसार के यशस्वियों को भी कोई न कोई राहु ग्रस लिया करता है। कोई यशस्वी है, कोई राहु आ जाता है और ग्रहण लग जाया करता है। उन्होंने कहा कि भरत, तुम्हारे यश-चन्द्रमा के लिए राहु तो निकल आया, लेकिन ग्रहण नहीं लग पाया। राहु कौन है? बोले, कैकेयी ही राहु है। कैकेयी का कार्य ही राहु है। पर आश्चर्य है कि कैकेयी के कर्म रूप राहु ने भरत के यश-चन्द्र को नहीं ग्रस पाया। बल्कि कहना चाहिए कि उलटी बात हो गई। क्या? राहु चन्द्रमा को ग्रस

लिया करता है, पर यहाँ कैकेयी के राहु ने भरत के यश चन्द्रमा को ग्रसा नहीं, बल्कि और उजागर कर दिया। ऐसा कह सकते हैं कि कैकेयी ने अनर्थ न किया होता, तो भरत का यश इतना उजागर न हुआ होता, इतना सामने न आता, जितना उनके अनर्थ के बाद प्रकाश में आया।

ग्रसिहि न कैकइ करतबु राहू। २/२०८/४

यदि कवित्वपूर्ण भाषा में कहें, तो उसको ऐसे कहेंगे कि ग्रहण क्यों नहीं लगता? क्योंकि ग्रहण लगने का भी एक नियम है। सूर्य-ग्रहण जब भी लगेगा, तो अमावस्या को लगेगा। चन्द्र-ग्रहण लगेगा, तो पूर्णिमा को लगेगा। पूर्णिमा को छोड़कर अन्य तिथि में चन्द्रग्रहण नहीं लगेगा। मानो राहु प्रतीक्षा करता रह गया। भरत के चरित्र में भी अगर पूर्णता का अभिमान आता, तो ग्रहण लग जाता। पर उन्होंने कभी न अपने को पूर्ण माना, न ग्रहण लगा। श्रीभरत के चरित्र में निरभिमानता की पराकाष्ठा है। पूर्णता होते हुए भी अपूर्णता और दीनता का भाव निरन्तर उनके अन्त:करण में बना रहता है।

उसके पश्चात् एक बड़ी बात जो कही गई कि गुरु वशिष्ठ पग-पग पर परास्त हुए और चन्द्रमा ने अपने गुरु की अवहेलना की, यह पुराणों में कथा आती है। बृहस्पति चन्द्रमा के गुरु हैं। अन्त में चन्द्रमा ने गुरु का अनादर किया। पर महर्षि भरद्वाज ने कहा कि भरत तुम्हारे यश-चन्द्रमा की विशेषता यह है कि गुरु ने भी हार स्वीकार कर ली। प्रत्येक व्यक्ति ने जिसकी महिमा को स्वीकार कर लिया हो, वह अगर गुरु की उपेक्षा कर दे, तो आश्चर्य नहीं है। पर धन्य है तुम्हारा चरित्र !

गुर अवमान दोष नहिं दूषा। २/२०८/५

गुरु के अपमान का दोष तुम्हारे चरित्र में एक क्षण भी नहीं आया, परास्त गुरुदेव को भी तुमने कितना सम्मान दिया, कितना महत्त्व दिया ! ऐसे-ऐसे दृष्टान्त भी हैं।

काशी के एक प्रसिद्ध बड़े विद्वान थे। मैं नाम नहीं लेना चाहूँगा। प्राचीन परम्परा थी, घूम-घूम कर शास्त्रार्थ करने की। उन्होंने सारे देश के पण्डितों को हरा दिया। लौटकर काशी आए, तो गुरुजी के पास गये, प्रणाम किया। गुरुजी ने गद्‌गद होकर कहा कि मैंने सुना है कि तुमने देश के सारे विद्वानों को परास्त कर दिया है, तो उसने कहा कि बस अब आप ही बाकी हैं। उसका अभिप्राय है कि इसका भी एक गर्व होता है कि व्यक्ति यह न मान ले कि यह हमारी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। इसलिए गुरु का अनादर भी...। धन्य हैं श्रीभरत, देखिए न पग-पग पर गुरु ने शिष्य से दीक्षा ली, पर अन्त में जब श्रीभरत ने निर्णय लिया कि अयोध्या के राज्यसिंहासन पर प्रभु की पादुकाओं को पधरावें, तो गुरुदेव के चरणों में गये और उनको साष्टांग प्रणाम किया और कहा, गुरुदेव, अयोध्या के सिंहासन पर प्रभु की पादुका को पधरा कर राज्य-कार्य दास करे, क्या यह धर्म के अनुकूल होगा? इसका निर्णय तो आप ही करेंगे। गुरु वशिष्ठ धर्म के प्रश्न पर बार-बार पराजित हुए, पर श्रीभरत ने कहा कि धर्म का निर्णय तो आप ही करेंगे। मेरा यह कार्य अगर धर्म के विरुद्ध न हो, तो मैं ऐसा करूँ ! उस समय श्रीवशिष्ठ ने गद्‌गद कण्ठ से कहा, भरत, धर्म की व्याख्या शब्द के सन्दर्भ में शास्त्र प्रमाण है और शास्त्र की व्याख्या व्यक्ति बुद्धि से करता है। अब तक तो मैं धर्म की व्याख्या शास्त्र से किया करता था, पर अब मैंने निर्णय कर लिया है कि धर्म की व्याख्या मैं शास्त्र के द्वारा नहीं करूँगा। तब किससे करेंगे? जो वाक्य गुरु वशिष्ठ ने श्रीभरत के लिये कही, वह तो श्रीराम के लिये भी उन्होंने नहीं कही। अद्‌भुत वाक्य उन्होंने कहा, भरत मैं तो बस एक वाक्य में कह सकता हूँ कि –

समुझब कहब करब तुम्ह जोई।
धरम सारु जग होइहि सोई।। २/३२२/८

तुम जो समझोगे, जो कहोगे, जो करोगे, उसे बिना विचार किए मैं मान लूँगा कि भरत ने ऐसा समझा है, तो यही धर्म है। भरतजी ने अगर ऐसा शब्द कहा है, जो वाक्य उसके मुँह से निकलेगा, उसे मैं धर्म मानूँगा, जो क्रिया उनसे होगी, उसे मैं धर्म मानूँगा, उनका जो विचार होगा, उसे मैं धर्म मानूँगा। सचमुच श्रीभरत की महिमा यही है। श्रीभरत में सचमुच समस्त सद्‌गुण विद्यमान हैं। एक बड़ी मीठी बात इस प्रसंग में श्रीरामचन्द्र जी ने कहा कि चन्द्रमा में सारे दोष हैं, लेकिन सारे दोषों के साथ एक छाया भी तो दिखाई देती है। श्रीभरत के यश-चन्द्रमा में वह छाया विद्यमान है कि नहीं? गोस्वामीजी ने कहा – हाँ है। बोले –

जहँ बस राम पेम मृगरूपा। २/२०९/१

चन्द्रमा के हृदय में कालापन है, पर धन्य हैं भरत, अगर काली छाया है, तो श्रीराम के श्यामता का कालापन है, संसार के किसी दोष का कालापन नहीं है। **(क्रमशः)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (१२६)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से २०२२ तक अनवरत प्रकाशित हुआ था। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

हम पुन: प्रेमेश महाराज के प्रसंग पर लौटते हैं। वर्ष १९६२ के अन्तिम चरण में महाराज के शरीर पर एक न एक विपत्ति आने लगी। अन्तत: मठ के प्रबन्धकों ने उन्हें काशी धाम भेज दिया था। वाराणसी के जल के गुण से या जो कोई भी अन्य कारण रहा हो, १९६३ से १९६४ तक उनके स्वास्थ्य में सुधार होता रहा। सेवकगण अतीव उत्साहपूर्वक यह सोचने लगे कि महाराज का स्वास्थ्य आगे चलकर और अच्छा हो जाएगा। महाराज को सक्रिय करने हेतु सेवक जोरपूर्वक उनसे उसी तरह पत्र लिखवाने लगा, जैसे माता-पिता छोटे बच्चे से लिखवाते हैं। यह पत्र ध्रुव को लिखा गया था। यही महाराज का अपने हाथ से लिखा हुआ अन्तिम पत्र है।

श्रीरामकृष्ण:

प्रिय ध्रुव, वाराणसी

२-२-६४

मैं स्वस्थ हो गया हूँ, यही बात बताने के लिए यह पत्र अपने हाथ से लिख रहा हूँ। तुम विश्वास कर पाओगे कि नहीं, यह मैं नहीं बता सकता। "अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम्। शेषा: स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमत: परम्।। मैं इतना कष्ट पा रहा हूँ, फिर भी जीवित रहने के लिए कैसा हंगामा करता हूँ। कितना धन-व्यय, बन्धु-मित्रों को कितना कष्ट ! हाय ! किसी भी प्रकार से शरीर नहीं छोड़ सका। अरे ! तुम तो मेरे हाथ की लिखावट खूब पहचानते हो, किन्तु यह लिखावट देखकर क्या यह मेरी लिखावट लगती है? जय रामकृष्ण, जय रामकृष्ण ! तुम मेरी शुभेच्छा जानना और श्रीमान निखिल को बताना।

इति

प्रेमेशानन्द

वर्ष १९६४ में महाराज के हाथ को कुछ सक्रिय बनाने के प्रयास से उनसे थोड़ा-थोड़ा काम कराया जाता था। उस समय सेवक के लिए उन्होंने श्रीरामकृष्ण-पूँथी की एक प्रति खरीद ली और आधे घंटे परिश्रम करके सेवक की प्रसन्नता और शुभेच्छा के प्रतीक रूप में अपने हाथ से यह आशीर्वचन लिख दिया। सम्भवत: यही उनके हाथ से लिखी गई अन्तिम तिथि है –

श्रीरामकृष्ण:

श्रीश्रीरामकृष्ण-कथामृत और श्रीमद्भगवद्-गीता के साथ पढ़ने के लिए श्रीरामकृष्ण देव के जीवन और वाणी के कवित्वमय, चित्ताकर्षक वर्णन से युक्त यह श्रीश्रीरामकृष्ण-पूँथि श्रीमान् ब्रह्मचारी सनातन को स्नेहपूर्वक उपहार दिया।

प्रेमेशानन्द

श्रीश्रीकाशीधाम,

श्रीरामकृष्ण सेवाश्रम

५-१२-६४

उस समय महाराज के शरीर के बारे में एक तथ्य सेवक द्वारा लिखित २७-०२-६५ के पत्र में मिला। सेवक ने एक व्यक्ति को लिखा था, "इतने वर्षों तक कितने ही उपचार हुए, किन्तु कोई लाभ नहीं दिखा। इस समय खुजली रोग से वे चौबीसों घंटे छटपटाते रहते हैं। इसके उपचार का कोई भी उपाय हमें नहीं दिखाई पड़ रहा है। यदि आप एक बार आकर अपनी आँखों से देख लेते, तभी समझ सकते हैं कि उनकी यह स्थिति कितनी विकट हो गई है। उनका भोजन है मछली, भात और पनीर (छेना)। कभी-कभी मुड़ी का चूर्ण। मात्रा तो आप समझते ही हैं। भ्रमण सायं-प्रात: लगभग दो घंटा। शेष समय बिस्तर पर सारा कार्य। इस समय कोलकाता के होम्योपैथिक चिकित्सक ज्ञान मजुमदार

की दवा खा रहे हैं।''

किन्तु १९६५ के मध्य काल से उनकी स्थिति में तेजी से अवनति होने लगी। जितना ही शरीर रोगाक्रान्त होता रहा, महाराज उतने ही अन्तर्मुखी होते गए।

२८-०२-१९६५

कल शिवरात्रि है।

सेवक – कल विश्वनाथजी का दर्शन करने जाऊँगा।

महाराज – अच्छा तो है, जाओ न !

सेवक – भीड़ होगी और अल्प समय में ही धक्का-मुक्की के बीच जाना। इसीलिए जाने की बहुत इच्छा नहीं है।

महाराज – हमारे ठाकुर ही तो गंगा, विश्वनाथ सब हैं। ठाकुर को देख लेने से ही विश्वनाथजी का दर्शन होगा। जब रोज विश्वनाथजी का प्रसाद खाता हूँ, तो मैं मन ही मन विश्वनाथजी के पास चला जाता हूँ – वही घर, वही घिरा हुआ स्थान। जब जगन्नाथजी का प्रसाद खाता हूँ, तब जगन्नाथजी के पास चला जाता हूँ। मन से ही तो सब कुछ है।

तुम लोग कल उपवास करके मत रहो। दिन भर बिना खाए मेरे लिए परिश्रम करोगे, इससे मुझे बड़ा कष्ट होता है। ठाकुर उपवास के विरोधी थे। उन्होंने हृदय से कहा था, ''दोपहर में कुछ नहीं खाने से मुख से एक तरह की गंध आती है।'' मैंने भी अनुभव किया है। स्वामी विरजानन्द जी ने विशुद्धानन्द जी महाराज से कहा था, ''तुम लोग बच्चे हो, इतना सब नहीं करना होगा। तुम लोग भोजन करना।'' मैं एक बार ढाका तक गया था पास में बैठकर, किसी से सब प्रसाद उन्होंने मँगवा लिया। मुझे उठने नहीं दिया। वे बोले, ''वहीं हाथ-मुँह धो लो।'' तत्पश्चात् पीने के लिए उन्होंने स्वयं ही जल उड़ेल दिया। बिल्कुल माँ के समान थे।

इसके अतिरिक्त मैंने मठ में ठाकुर के पुजारी को देखा है। पूजा हेतु जाने के पूर्व भण्डार में जाकर थोड़ी मिठाई खाकर आ गए। मैं तो स्तब्ध रह गया ! बाद में सोचकर देखा, तो समझ गया कि ठीक ही तो है। भूखे रहने पर अच्छा-अच्छा भोग देखकर लोभ हो सकता है। एक व्यक्ति तो अच्छे युवक हैं, किन्तु मैंने देखा कि पूजा समाप्त करके, नीचे उतरकर सबके मुँह में कुछ प्रसाद डाल देते।

ठाकुर को जो कुछ भी देना, भले ही वह कम मात्रा में हो, किन्तु वह अच्छा होना चाहिए। अच्छा मैदा, अच्छा घी, अच्छी सूजी और अच्छी तरह पकाकर और तैयार करके।

०२-०३-१९६५

अभी कल शिवरात्रि थी। सुबह साधु निवास के सामने उत्तर दक्षिणवाले रास्ते पर महाराज टहल रहे हैं। इसी समय ललित महाराज आए। प्रात: के लगभग आठ बजे होंगे।

ललित महाराज : कल हमलोगों ने दोनों समय विश्वनाथजी का दर्शन किया।

महाराज – भांग खाया? मुझे तो प्रसाद दिया नहीं। बाबा (स्वामी अखण्डानन्द जी) के जीवनकाल के बाद मैं जब सारगाछी गया, तो देखा कि शिवरात्रि आ गई है। उनलोगों ने सामानों की सूची दी। उस सूची में भांग लिखा था। मैंने कहा – भांग लाना ठीक नहीं है। उन सबने कहा – बाबा भांग का भोग देते थे। देखो, कैसी स्थिति है ! शिव हैं, तो भांग खाकर मतवाले होते हैं। हमलोग तो ठाकुर को जानते हैं। वे किस तरह विभोर होते थे। वे 'कारण' शब्द का उच्चारण होते ही विभोर हो जाते थे। एक दिन काली मन्दिर से आते हुए श्रीमाँ को धक्का देकर ठाकुर कहते हैं – क्या मैंने सुरापान किया है?

१२-०३-१९६५

महाराज – ठाकुर ने दो बातें कही हैं – विष्ठा वाली जगह पर चना गिर जाने पर भी चने का पौधा ही उगेगा और जैसा सूरन (जिमीकन्द) वैसा उसका मुख (ऊपरी भाग) होगा। अर्थात् वंशानुगत ढंग से संस्कृति और चाल-चलन होता है। अपने कर्मफलानुसार मन निर्मित होता है।

ठाकुर की तिथि-पूजा का दिन आने पर –

बुद्ध महाराज – सब आपका ही गाना गाया जा रहा है।

महाराज – यह आप सबकी चीज है। केवल मेरे मुख से निकालकर उन्होंने आप सबकी चीज को आप सबके दरवाजे पर पहुँचा दिया है।

कुछ दिनों पहले की घटना है – ३१ अक्तूबर, १९६३। पूजनीय माधवानन्द जी महाराज और प्रेमेशानन्द जी महाराज की आमने-सामने की बातचीत। पुराने पत्रों से खोजकर यहीं पर उद्धृत करता हूँ।

माधवानन्द महाराज – खुजली कुछ कम हुई है?

प्रेमेश महाराज – बाप रे ! भीषण ! पैर-पेट सब जगह ! एलोपैथी, होम्योपैथी और आयुर्वेद सब उपचार हुआ। सौभाग्य से यह सनातन था। दिनभर यहीं रहता है, कहीं भी नहीं जाता। बुद्धिमान है, विद्वान है।

माधवानन्द महाराज – इसमें हृदय है और निष्ठा है, लगे रहना ही असली चीज है।

प्रेमेश महाराज – दो-चार घंटा तो बहुत से लोग करते हैं, किन्तु एकदम से लगे नहीं रह सकते।

माधवानन्द महाराज – अब तो आपका भ्रमण का समय है, पहले सुला देगा तो? इतना तनाव एक साथ अच्छा नहीं। यह वह सब जानता है, कर देगा।

प्रेमेश महाराज – बड़ा कष्ट पा रहा हूँ। काशी-प्राप्ति के लिये आया, काशीवास करने तो नहीं आया हूँ।

माधवानन्द महाराज – आप वह सब चिन्ता मन में मत लाइए। अब तो सब परवश है, सब ठाकुर के हाथ में है। वे जब, जैसा करें।

प्रेमेश महाराज – दुख यही है कि इतने बच्चों को कष्ट दे रहा हूँ। तीनों लोगों को ही हमेशा व्यस्त रहना पड़ता है। इन सबके भविष्य के बारे में भी चिन्ता है।

माधवानन्द महाराज – शशी महाराज तो हमेशा ही ठाकुर को लेकर थे। उससे ही उनका हो गया।

प्रेमेश महाराज – उन लोगों की बात अलग है।

माधवानन्द महाराज – उपमा के रूप में कह दिया। किन्तु वे फल तो देंगे, निष्फल नहीं होगा। संन्यास-फंन्यास सब उससे ही होगा। वे सब कुछ सँवार देंगे। खुजली के लिए उपचार हो रहा है। होम्योपैथी की जगह अन्य उपचार होगा। आपको कष्ट हुआ है, इसीलिए वे सब सेवा करते हैं।

प्रेमेश महाराज – भक्तों के कितने धन से श्राद्ध हो रहा है?

माधवानन्द महाराज – वह सब कुछ नहीं। ठाकुर ने व्यवस्था की है। वे जानते हैं कि कब क्या आवश्यकता है। आप चिन्ता मत कीजिएगा।

प्रेमेश महाराज – इसीलिए तो मैं कहता हूँ – घर में आग लगाकर फिर जल डालते हैं।

माधवानन्द महाराज – उनका क्या हिसाब है, वे ही जानते हैं। दो-चार दिन हुआ, अखबार में आया है कि इटली में ६०० फुट का भूस्खलन एक झील में गिर पड़ा। झील का पानी बाँध से ऊपर उठकर कुछ मिनटों में ही एक नगर को ध्वंस कर गया। कुछ साइकिल के टुकड़ों की तरह पाए गए हैं। कौन जानता है, ठाकुर उन्हें किसी उन्नत अवस्था में ले जा रहे हैं कि नहीं। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ३०१ का शेष भाग

विश्वरूप को दिखा रहे हैं या ऐसे कह सकते हैं कि सदा भगवान तो वही रूप हैं। इस समय भगवान का जो रूप दिख रहा है, इनका जो यह मानुषी रूप है, यह माया के द्वारा लिया गया रूप है। भगवान मानो अपने को इस रूप में किसी प्रकार समाकर रखते हैं। जो असीम है, वह सीमा के भीतर सीमाबद्ध कैसे होगा? यही तो सूक्ष्म बात है ! ऐसा वह अपने बल पर अपनी योगशक्ति के द्वारा करते हैं। भगवान कहते हैं – अर्जुन ! मैंने तुझ पर कृपा की। मैं प्रसन्न हुआ। मेरे प्रसन्न होने के कारण ही तू मेरे इस रूप को देखने में समर्थ हुआ। तेरे सिवाय दूसरा कोई इस रूप को नहीं देख सका। यह रूप किसी अन्य उपाय से देखा जाना सम्भव नहीं है। इस रूप को देखने के लिए केवल मेरी प्रसन्नता ही चाहिए। भक्त जब मेरी प्रसन्नता को पा लेता है, तब उसे मेरा यह रूप दिखाई देता है। मैं इस रूप में प्रकट होता हूँ। **(क्रमशः)**

कविता

वीर विवेकानन्द आ गये

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

वीर विवेकानन्द आ गये, करने को जग का उद्धार ।
विपुल शक्तिधर नित्यमुक्त हैं, चिदानन्द हैं वे साकार ।।
विवेकभूषित सत्यनिष्ठ हैं, करते हैं जग-जन को प्यार।
मुक्त स्वयं हैं मुक्तिप्रदाता, मातृभक्त वे इस संसार ।।
दुखियों का दुख वे हरते हैं, करुणा-विगलित हृदय उदार।
त्यागवान वैराग्यशील हैं, ज्ञान-भक्ति के हैं आगार ।।
रामकृष्ण के भावप्रचारक, करते सदा असत प्रतिकार ।
धर्मशास्त्र के प्रखर प्रवक्ता, मुग्ध जगत है वाणि-विचार ।।
सकल मोह-अज्ञान-विनाशक, दीप्त सूर्य सम तेज अपार।
स्थिर बुद्धि सदा सुखदायक, नित्य मुक्त हैं विषय-विकार।।
सुन्दर वपुधर कमलनयन हैं, रत हैं सदा ज्ञान-विस्तार ।
आत्मज्ञान के परम उपासक, प्रणति तुम्हें है बारंबार ।।

साधुओं के पावन प्रसंग (५२)

स्वामी धीरेशानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

स्वामी धीरेशानन्द

१९७० ई. के फरवरी महीने में विवेकानन्द पॉलिक्लीनिक, लखनऊ का उद्घाटन हुआ। हम १५२ संन्यासी वहाँ पर उपस्थित हुए थे। अद्वैत आश्रम, कोलकाता वापस आने के समय काशी में मैं कई दिन तक था। एक दिन प्रात: मन्दिर से सेवाश्रम में वापस आते समय दाढ़ी वाले एक संन्यासी को प्रणाम किया। इन संन्यासी को मैंने पहले कभी नहीं देखा था, किन्तु नाम सुना था। उन्होंने मुझसे पूछा, ''क्या नाम है?'' ''चेतनानन्द।'' ''तुम तो बहुत अच्छा लिखते हो। क्या तुमने संस्कृत का अध्ययन किया था?'' ऐसा लगता है कि उन्होंने उद्बोधन पत्रिका में प्रकाशित मेरा लेख 'रामचरिते कालिदास ओ भवभूति' पढ़ा होगा। ''तुम मेरे साथ भेंट करना'' ऐसा कहकर वे चले गये।

अम्बिकाधाम, सेवाश्रम, वाराणसी के पीछे एक छोटे-से कमरे में वे रहते थे। उनके साथ वेदान्त को लेकर बहुत विचार-विमर्श हुआ। वे शास्त्र में मग्न रहते थे और कहते थे कि कैसे वेदान्त के सत्य का जीवन में अनुभव किया जाये। जब मैं प्रशिक्षण केन्द्र, बेलूड़ मठ में था, तब ब्रह्मचारी सुजीत और मदन कनखल से आये थे। दोनों ने धीरेशानन्द जी महाराज से शास्त्र का अध्ययन किया था। महाराज का आदेश था – ''तुमलोग प्रतिदिन चार श्लोक कण्ठस्थ करके आना, मैं उसी की व्याख्या करूँगा। केवल मैं परिश्रम करूँगा और तुमलोग परिश्रम नहीं करोगे, ऐसा नहीं चलेगा।''

स्वामी धीरेशानन्द (१९०७-१९९८) स्वामी सारदानन्द जी महाराज से दीक्षित थे और १९३२ ई. में उनका संन्यास हुआ था। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन तपस्या, साधना, अध्ययन और अध्यापन में व्यतीत किया तथा कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना भी की है। १९७० ई. से १९९८ ई. तक उनके साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध था। जब मैं भारत वापस आता था, तो कई दिन उनके साथ व्यतीत करता था, इसके अलावा भी उनके साथ पत्र के माध्यम से बातें होती थीं।

मठ-मिशन में सम्मिलित होने के पश्चात् से ही मैं शास्त्रज्ञ और साधक साधुओं का सत्संग करता था। मेरी छात्रसुलभ मनोवृत्ति पहले भी थी और अभी भी है। जीवन में सीखने का कोई अन्त नहीं है। प्रतिदिन नवीन सीखने से ज्ञानभण्डार में वृद्धि होती है तथा मनुष्य को पुराना नहीं होने देता। मन में जंग लग जाने से मनुष्य मूढ़ हो जाता है। इस प्रकार की गतिहीनता एक प्रकार की मृत्यु है। इनलोगों का लक्षण होता है : वे खाते और सोते हैं – easy going life lead (सुविधावादी जीवन व्यतीत) करते हैं।

१९७७ ई. में जब भारत वापस आया, तब काशी में कई दिन था। काशी में उस समय अनेक वरिष्ठ संन्यासी थे। समय मिलते ही मैं अनेक संन्यासियों के कमरे में जाकर प्रश्न करता था तथा उनकी स्मृतिकथा को सुनता था। तदुपरान्त कमरे में आकर दैनन्दिनी में लिखता या टेप करता था।

साधु जीवन के प्रथम दस वर्ष मैं अद्वैत आश्रम, कोलकाता में सेवारत था। हिमालय जाकर निरालम्बन होकर तपस्या करने की कामना मन में जागृत होती थी, किन्तु कोई सुयोग नहीं मिला। ठाकुर के पार्षदों का त्याग, तपस्या, कठोरता मेरे युवा मन को प्रेरित करता था। स्वामी धीरेशानन्द जी महाराज का मैं बहुत ऋणी हूँ। उन्होंने मुझे अपनी दैनन्दिनी देकर मेरी अतृप्त कामना को बहुत कुछ पूर्ण किया है। वे स्वभाव से ही एक वेदान्तनिष्णात संन्यासी थे और उन्होंने मधुकर जैसा मठ-मिशन तथा अन्य सम्प्रदाय के संन्यासियों से पूरा जीवन यह अध्यात्म-मधु संचय किया था। उसे उस दैनन्दिनी में बहुत सुन्दर अक्षरों में लिखकर रखा था। उसका नाम दिया था – 'सत्संग-रत्नावली।' ऐसा कहा जा सकता है कि मैंने बिना परिश्रम के ही एक संन्यासी

के सम्पूर्ण जीवन के परिश्रम से अर्जित सम्पति प्राप्त कर ली। उनके उस दैनन्दिनी से ही कुछ वरिष्ठ संन्यासियों के संस्मरण उद्बोधन पत्रिका में प्रकाशित किये गये थे; और अभी निबोधत पत्रिका में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हो रहा है। महाराज की दैनन्दिनी को आधार बनाकर 'From the Diary of a Monk' नामक मैंने तीस व्याख्यान दिये हैं। यह दैनन्दिनी अध्यात्म-पिपासुओं के लिए अमूल्य सम्पदा है।

महाराज के पास कई प्रकार की दैनन्दिनी थी। हिमालय के संन्यासियों के बारे में दो खण्डों में लिखा दैनन्दिनी का नाम था 'सत्संग-रत्नावली' और उनके व्यक्तिगत दैनन्दिनी में रामकृष्ण संघ के संन्यासियों की स्मृतिकथा थी। इसके अलावा उनके पास कई और दैनन्दिनी थी।

इस व्यक्तिगत दैनन्दिनी और छोटे-छोटे दैनन्दिनी के विषय में उन्होंने २४/१२/१९८२ में स्वयं लिखा है :

''एक छोटी कॉपी में बहुत छोटे-छोटे अक्षरों में ४०-५० वर्षों से बहुत सारी बातें लिखकर रखा हूँ। खोल कर देखा कि पहले का लिखा हुआ बहुत-सा अस्पष्ट होता जा रहा है। मेरी स्वयं की भी सामर्थ्य नहीं है कि उनको कॉपी कर सकूँ। बहुत-सी अप्रकाशित कथाएँ भी वहाँ पर हैं, जिसे प्रकाशित नहीं किया जा सकता। उन सभी की छँटाई करनी होगी। सोच रहा हूँ कि यक्ष का धन तुमको ही दे दूँ। दैनन्दिनी कैसे भेजूँगा? क्या अद्वैत आश्रम उसको पुस्तक के साथ भेज देगा? यह सब मुझे नहीं मालूम। क्या कोई निकट भविष्य में अमेरिका से भारत आयेगा? यदि ऐसा होगा, तो उसके हाथ में दे दूँगा। महाराज (राजा महाराज) तथा ठाकुर के अन्य पार्षदों के विषय में बहुत नवीन बातें उसमें अवश्य पाओगे, जो वरिष्ठ संन्यासियों के मुँह से सुना था। अभी तक वह कॉपी किसी को नहीं दिया। अकस्मात् मेरी मृत्यु के बाद वह सब कचरे के डिब्बे में फेंक देंगे।''

०४/०२/१९८३ को महाराज ने लिखा था : ''तुम्हारे कथनानुसार मेरी छोटी नोटकॉपी (यक्ष का धन) ४/२/१९८३ को Ragistered air mail से भेजी गयी है। बहुत खर्चा हुआ। जो भी हो, अब तुमको मिलने से ही हुआ। प्राप्त करने पर अवश्य अवगत कराना, क्योंकि मैं उसके लिए चिन्तित रहूँगा। कॉपी बहुत ही छोटे-छोटे अक्षर में अपने लिए ही लिखा था, जिससे अन्य कोई सहज में नहीं पढ़ पाये। आरम्भ का कई पृष्ठ फाड़ दिया हूँ, क्योंकि उसमें महाराजगणों से सम्बन्धित प्रसंग नहीं है, उत्तराखण्ड के वरिष्ठ साधुओं की बातें लगभग ५० वर्ष पूर्व की लिखी हुई हैं। कॉपी के अन्त में प्रभास महाराज (स्वामी देवाशानन्द) द्वारा कथित महात्मा मथुरादास की बातें हैं। वे हरिद्वार के एक प्रसिद्ध संन्यासी थे। स्वामीजी के भाई महेन्द्रनाथ दत्त ने अपनी पुस्तक 'साधु चतुष्टय' में मथुरादास की कहानी श्रद्धा के साथ लिखी है। कॉपी में बहुत-सी बातें हैं, फिर भी ऐसा कुछ प्रकाशित नहीं करना, जिसके लिए मुझे सबके सामने छोटा होना पड़े। ये सब लिखा हुआ तुम्हारे किसी कार्य में आया कि नहीं बताना।''

मुझे वह मूल्यवान व्यक्तिगत दैनन्दिनी मिली। वह अलग से (प्राचीन साधुदेर कथा – द्वितीय खण्ड) प्रकाशित होगी। १९३६ से १९६९ ई. तक महाराज ने उत्तरकाशी, हृषिकेश, हरिद्वार अंचल के बहुत से साधुओं का संग किया था और उनके साथ हुई वार्तालापों को कई बृहत् दैनन्दिनी में सुन्दर से उपशीर्षक देकर लिखा था। २५/१०/१९८५ को महाराज ने मुझे लिखा था : ''मेरे पास कई नोटबुक हैं। उसमें उत्तराखण्ड के वेदान्ती संन्यासियों के वेदान्त की कई कथाएँ और कहानियाँ हैं। मेरी जो अवस्था है उसमें मैं वह सब लेकर क्या करूँगा। तुम्हारे कुछ कार्य में आ जाये।''

मैंने अविलम्ब पैसा भेज दिया और वह सब जहाज से रजिस्ट्री करके भेजने के लिए कहा। उन्होंने ११/१२/१९८५ ई. को काशी से लिखा : ''परसों मानिक बाबु (वहाँ के एक सेवक) द्वारा दूर के G.P.O. से दैनन्दिनियों को तुम्हारे नाम और पता पर Ragistered sea mail से भेजा गया है। प्राप्ति-संवाद अवश्य ही देना तथा वह लिखा हुआ तुम्हारे किसी कार्य आया कि नहीं, बाद में बताने से मुझे खुशी होगी।''

दो महीने बाद दैनन्दिनी मिलने पर मैंने प्राप्ति-संवाद दिया और उत्तराखण्ड के उन सब महात्माओं का परिचय जानना चाहा। इसके उत्तर में महाराज ने १६/०३/१९८६ ई. को काशी से लिखा : ''पार्सल निर्विघ्न पहुँच गया, यह जानकर निश्चिन्त हुआ। लिखा हुआ तुमको बहुत पसन्द आया और वह तुम्हारे कार्य आया, यह जानकर आनन्दित हुआ। यदि तुमको ऐसा लगे, तो अपनी पसन्द से विषय को चुनकर एक पुस्तक भी प्रकाशित कर सकते हो। जिसमें उन सब महात्माओं का नाम देना, किन्तु मेरा नाम देने की आवश्यकता नहीं। जैसा अच्छा समझो, वैसा करो। महात्माओं की आन्तरिक बातें हृदयग्राही और सबके लिए कल्याणकारी हैं। **(क्रमशः)**

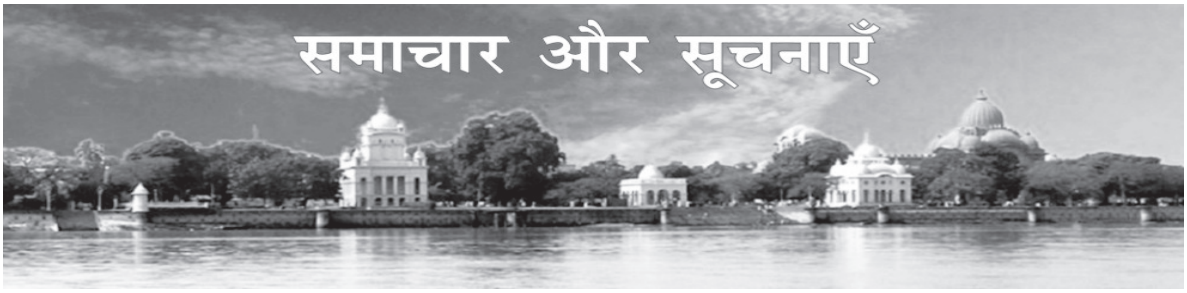

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में महाशिवरात्रि-पूजा का आयोजन हुआ

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में १८ फरवरी, २०२३ को महाशिवरात्रि-पूजा का आयोजन हुआ। सन्ध्या आरती के बाद मन्दिर में शिवजी की पूजा हुई और गंगाजल, दूध, दही, घी, मधु से अभिषेक किया गया। शिवनाम-संकीर्तन और शिवजी के भजन हुये। अन्त में 'ओम् जय शिव ओंकारा' से शिवजी की भव्य आरती हुई। सभी भक्तों को फल, हलवा प्रसाद वितरित किया गया।

श्रीरामकृष्ण देव का जन्मोत्सव मनाया गया

विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण देव का १८८वाँ जन्मोत्सव मनाया गया। आश्रम परिसर में स्थित श्रीरामकृष्ण मन्दिर में प्रात: ५ बजे श्रीरामकृष्ण देव की मंगल आरती हुई। ७ बजे से विशेष पूजा प्रारम्भ हुई। ९ बजे से भजन हुआ। १०.१५ बजे हवन, ११.३० बजे भोग और १२ बजे भोग-आरती हुई। आश्रम के सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी महाराज ने श्रीरामकृष्ण के जीवन-चरित्र पर प्रवचन दिया। उसके बाद सभी भक्तों ने पुष्पांजलि समर्पित की। लगभग १२.३० बजे से सबको खिचड़ी और लड्डू प्रसाद वितरित किया गया। १२५० भक्तों ने प्रसाद ग्रहण किया।

शाम को ६ बजे सन्ध्या आरती हुई। उसके बाद श्रीरामकृष्णनाम-संकीर्तन और भजन हुये। आगत सभी भक्तों को प्रसाद प्रदान किया गया।

व्यक्तित्व विकास शिविर आयोजित हुआ

३ मार्च, २०२३ को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा शासकीय नेहरू स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, डोंगरगढ, जिला राजनांदगाँव में व्यक्तित्व विकास शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें डॉ. शैलेन्द्र कुमार सिंह, पूर्व कुलपति मैट्स और शहीद महेन्द्र कर्मा विश्वविद्यालय, बस्तर, डॉ. विनीत साहू, प्रो. कचनाधुरवा महाविद्यालय, छुरा, डॉ. प्रदीप कुमार जामबुलकर, प्राचार्य, शा.ने.म.वि. डोंगरगढ़ और स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने छात्र-छात्राओं को सम्बोधित किया।

विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा रायपुर में युवा सम्मेलन का आयोजन हुआ

२४ फरवरी, २०२३ को विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के जीवन पर केन्द्रित एक दिवसीय 'विवेकानन्द युवा सम्मेलन' का आयोजन किया गया। कार्यक्रम पाँच सत्रों में आयोजित था। सम्मेलन का उद्घाटन श्री विवेक आचार्य, संचालक, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, छत्तीसगढ़ शासन और बिग्रेडियर आशीष कुमार दास ने किया। अन्य सत्रों को रामकृष्ण मिशन रायपुर के सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी महाराज, रामकृष्ण मिशन, इन्दौर के सचिव स्वामी निर्विकारानन्द जी महाराज, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, स्वामी सेवाव्रतानन्द जी महाराज, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अधिवक्ता श्री रविराज सिंह जी और डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी ने सम्बोधित किया। इस अवसर पर विवेकानन्द विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'जगज्जननी श्रीमाँ सारदा' का विमोचन भी किया गया।

रामकृष्ण सेवा मण्डल, भिलाई में भक्त-शिविर

रामकृष्ण सेवा मण्डल, भिलाई में ५ मार्च, २०२३ को एक भक्त सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें १०३ भक्तों ने भाग लिया।